पशुधन प्रकाश

षष्टम अंक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
करनाल– 132 001 (हरियाणा) भारत

पशुधन प्रकाश

षष्टम अंक

ISSN 0976-4569

संरक्षक एवं प्रकाशक
आर्जव शर्मा, निदेशक

मुख्य सम्पादक
अनिल कुमार मिश्र

सम्पादक मंडल
मनीषी मुकेश
रेखा शर्मा
साकेत कुमार निरंजन
सोनिका अहलावत
सतपाल

© भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)

अंक–6 (वर्ष–2015)

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गए आंकड़े तथा विचार लेखकों के अपने हैं।
उनके लिए संपादक मंडल अथवा ब्यूरो किसी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

मुद्रक
इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
343, पहली मंजिल, मुगल कॅनाल, करनाल – 132 001 (हरियाणा)
फोन नं. 0184–4043541, 093157–80004, ई–मेल: jobs.ipp@gmail.com

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
ICAR NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
Post Box-129, G.T. Road - Bye Pass, Near Basant Vihar
KARNAL - 132 001 (Haryana)

डा. आर्जव शर्मा
निदेशक
Dr. Arjava Sharma
Director

निदेशक की कलम से........

राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल की वार्षिक हिंदी पत्रिका पशुधन प्रकाश के छठे अंक को प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। हमारा संस्थान भारतीय पशु संपदा के अनुवांशिक संसाधनों की विभिन्न विशेषताओं तथा आनुवंशिक क्षमताओं की पहचान करने के लिए निरंतर प्रयासरत है। वर्तमान में संस्थान ने कजली भेड़, सिंघरी बकरी, राजापलयम और चिप्पीपरई श्वान के साथ-साथ देसी पशुओं की कम-ज्ञात आबादी के प्ररुपी लक्षण निर्धारण कार्य को पूरा किया हैस सीरी गाय, माऊली एवं येल्गा भेड़, सिक्किम बकरी व कोनायेन मुर्गी के लक्षण निर्धारण का कार्य प्रगति पर है।

राष्ट्रीय जीन बैंक में गाओलाओ और थारपारकर गायों तथा टोडा भैंस की 7600 वीर्य खुराकों को शामिल किया गया हैस संरक्षण और विकास कार्य के लिए जाफराबादी भैंस का वीर्य इसके प्रजनन क्षेत्र में उपयोग किया गया है। पूर्णिया, बिन्झरपुरी, असमी तथा कोसली गाय, मारवाड़ी, पूँछी और तिब्बती भेड़, बुन्देलखंडी तथा भाकरवाल बकरी, आसाम के शूकर, जालोरी ऊँट, अरुणाचली याक तथा मिथुन, राजस्थान के गधों, हाजरा मुर्गी, असाम की बत्तखों का नेटवर्क परियोजना के अंतर्गत तथा बारगुर एवं ओंगोल गाय और हरिनघटा मुर्गियों का संरक्षण कार्य किया गया हैस इसके अतिरिक्त, संस्थान ने प्रजनक सांडों की साइटोजेनेटिक स्क्रीनिंग के लिए परामर्श सेवाएं प्रदान करने का कार्य जारी रखा और गोपशुओं में वंशानुगत बीमारियों का पता लगाने का कार्य आरम्भ किया गया है।

पशु विज्ञान के साथ-साथ हमारा संस्थान राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार और इसके राजकीय कार्यों में प्रयोग को प्रगति देने हेतु निरंतर प्रयासरत है। संस्थान में राजभाषा कार्यान्वयन समिति की नियमित अन्तराल पर निरंतर बैठकें आयोजित की जाती हैं। तिमाही/छमाही रिपोर्टें मुख्यालय में निरंतर भेजी जाती हैं। हिंदी कार्यशालाएं और हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया जाता है, ताकि संस्थान के कार्मिकों को राजभाषा हिंदी के प्रति जागरुक रखा जा सके। इसी उद्देश्य से इस हिंदी पत्रिका को प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया था।

इस पत्रिका में पशु विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों यथा पशु चिकित्सा, प्रबंधन, उत्पादन, संरक्षण, चारा प्रबंधन इत्यादि ज्ञानवर्धक लेखों को शामिल करके पशुपालकों, किसानों, शोध कार्यों से जुड़े वैज्ञानिकों/विद्यार्थियों में चेतना जागृत करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास हेतु पत्रिका का प्रकाशन मंडल बधाई का पात्र है। मैं सभी लेखकों को धन्यवाद करता हूँ जिनके लेखों को इस पत्रिका में प्रकाशित किया गया है। गौरन्वित भाव से मैं सभी स्टाफ सदस्यों जिनके योगदान से यह पत्रिका पूर्ण हुई है, को बधाई देता हूँ। पत्रिका में सुधार और मार्गदर्शन के लिए आपके सुझावों का स्वागत है।

मे सहर्ष इस पत्रिका के सुनहरे भविष्य कि कामना करता हूँ।

(आर्जव शर्मा)
निदेशक

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो
ICAR NATIONAL BUREAU OF ANIMAL GENETIC RESOURCES
Post Box-129, G.T. Road - Bye Pass, Near Basant Vihar
KARNAL - 132 001 (Haryana)

सम्पादकीय

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल भारत में पालतू पशु एवं कुक्कुट संसाधनों की पहचान, मूल्यांकन, गुण निर्धारण, संरक्षण और उनके सतत उपयोग के अधिदेश हेतु देश की अग्रणी संस्था है। हमारे देश में पशु पालन एवं पशु चिकित्सा के क्षेत्र में उच्च एवं उन्नत कोटि के अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। लेकिन इन अनुसंधानों के परिणाम का अधिकतम लाभ तभी संभव हैं, जब इनके परिणाम किसानों और पशु पालकों को उनकी ही भाषा में सुलभ कराया जाए। हिंदी हमारे देश की राजभाषा है एवं यह दुनिया की श्रेष्ठतम भाषाओं में से एक है। भारत की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी ही है एवं देश में सर्वत्र मौजूद है।

'पशुधन प्रकाश' का षष्टम अंक आपके सम्मुख नए कलेवर में प्रस्तुत है। प्रस्तुत अंक में जहाँ देश की कम ज्ञात पालतू पशुओं एवं कुक्कुटो की नई नस्लों जैसे कि गाय की बिलाही और गंगातीरी, भेड़ की कजली, गधे कि स्पीति, बत्तख की नागहंस और देश के उत्तर-पूर्वी राज्यों में पाए जाने वाले मिथुन के साथ ही बकरी की सिरोही नस्ल का वर्णन किया गया है. वहीँ पशु पालन की अन्य विधाओं से सम्बंधित लेख भी दिए गए हैं. प्रस्तुत अंक में कुल 23 लेख सम्मिलित किये गए हैं, साथ ही पिछले वर्ष शोध पत्र लेखन प्रतियोगिता में पुरस्कृत प्रथम तीन शौध पत्रों का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

'पशुधन प्रकाश' के प्रकाशन में संस्थान के सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का सहयोग सराहनीय रहा है. सबके सहयोग से यह पत्रिका भविष्य में और भी अधिक सुदृढ़ एवं विकसित होगी। सम्पादक मंडल प्रकाशित लेखों के लिए सभी लेखकों का आभार व्यक्त करता है और आशा करता है कि भविष्य में भी आप सबके सहयोग से यह पत्रिका निर्बाध गति से विकास करेगी। पत्रिका में प्रकाशित लेखों के संबंध में समस्त पाठकों के सुझाव एवं विचार आमंत्रित हैं, साथ ही आगामी अंकों के निखार हेतु पाठकों का रचनात्मक सहयोग भी अपेक्षित है।

'पशुधन प्रकाश' के प्रकाशन में पूर्ण सावधानी बरती गई है तथापि त्रुटि की सम्भावना है, पाठक इसमें त्रुटि देखें तो अवश्य ही इंगित करें ताकि आगामी प्रयास में इसे सुधारा जा सके। हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि पशुधन प्रकाश का षष्टम अंक वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, शोध छात्रों, पशु पालकों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं आदि के लिए उपयोगी होगा।

सम्पादक मंडल

विषय–सूची

क्र. सं.	आलेख	पृष्ठ सं.
1.	बिलाही – उत्तर भारत की घुमन्तू गाय की नस्ल विकास वोहरा, अनिल कुमार मिश्र, साकेत कुमार निरंजन, मनोज कुमार एवं बी के जोशी	1
2.	गंगातीरी–उत्तर प्रदेश की एक उत्कृष्ट गौवंशीय नस्ल पुष्पेन्द्र कुमार सिंह, गोपाल सांखला एंव पी के सिंह	4
3.	पंजाब के किसानों की आजीविका में सहायक कजली भेंड़ का अध्ययन अनिल कुमार मिश्र, के एन राजा, विकास वोहरा, संजीव सिंह एंव यशवंत सिंह	8
4.	राजस्थान का गौरव सिरोही बकरी व उसका पालन अरुण कुमार, सिद्धार्थ मिश्रा, इन्द्रसेन चौहान, एस एम के नकवी	11
5.	स्पीति गधे – गुण व उपयोगिता राहुल बहल, ज्योत्सना बहल, पी एन अत्री और संजीव नढढा	19
6.	नाग हंस – छत्तीसगढ़ की स्थानीय बत्तख प्रजाति के मुखर्जी, मोहन सिंह, केषर परवीन एवं दिप्ती किरण बरवा	22
7.	मिथुन : उत्तरपूर्वीय पर्वतीय क्षेत्रों का गौरव एवं सांस्कृतिक प्रतीक अनुपमा मुखर्जी, सब्यसाची मुखर्जी, इमूमांग लौगंकुमार एवं मुनमुन मेच	24
8.	भेड़ों की प्रमुख नस्लें एवं उनके लक्षण अविनाश सिंह, आलोक कुमार यादव एवं सुनील कुमार	26
9.	स्वदेशी कुक्कुट जर्मप्लाज्म: कुक्कुट उत्पादन में सुधार के लिए एक परिसंपत्ति रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत, प्रियंका शर्मा, प्रदीप विज एवं मधुसूदन टांटिया	31
10.	जैव–विविधता: मानव जाति की जीवन रेखा मनीषी मुकेश, प्रवेश कुमारी, बी के जोशी, प्रीती वर्मा, संदीप मान एवं मोनिका सोढ़ी	40
11.	भारतीय अर्थव्यवस्था में बकरी का योगदान : उत्पाद व उपोत्पाद चेतना गंगवार, एस पी सिंह, महेश डिगे एवं अनुज कुमार सिंह सिकरवार	47
12.	अश्व जीनोम: एक अवलोकन अनुराधा भारद्वाज, यशपाल एवं अशोक कुमार गुप्ता	51
13.	कोशिका एक उपयोग अनेक सविता देवी, रेखा शर्मा एवं सोनिका अहलावत	55

14. ऊँटों में कृत्रिम गर्भाधान 63

ए एस महला, आर के चौधरी, ए एस गोदारा, बी एल कुमावत, एस के बड़सरा, अमित, आर के योगी एवं आलोक कुमार यादव

15. माइक्रोसैटेलाइट – लोकप्रिय आणविक चिह्नक 67

राकेश कुमार, बी डी लखचौरा एवं रीना अरोड़ा

16. पशुओं की प्रजनन सम्बन्धी समस्याएं एंव उनका निवारण 71

पुष्प राज शिवहरे, एन के वर्मा, रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं प्रियंका शर्मा

17. गर्भित पशु की देखभाल 76

संजय कुमार मिश्र एवं सर्वजीत यादव

18. काम करने वाले पशुओं का आहार 78

सत्येन्द्र पाल सिंह, धर्वेन्द्र सिंह एवं संजीव सिंह

19. नीलर्सना (ब्लूटंग) रोग 82

करमचन्द, एस के विश्वास, बी मण्डल एवं ए बी पाण्डेय

20. बकरियों की जूनोटिक बीमारियाँ 85

राकेश रंजन, धर्मेन्द्र कुमार एवं बी सी सरखेल

21. राजस्थान की कांकरेज, सांचोरी व नारी गायों में बहु–भिन्न रुपी विधि द्वारा शारीरिक माप के आधार पर विभेदीकरण 89

राकेश कुमार पुंडीर, प्रमोद कुमार सिंह एवं देविंदर कुमार सडाना

22. भारतीय गोपशुओ में रोग प्रतिरक्षण से सम्बंधित टी एल आर 6 जीन की बहुरूपताओं की पहचान व प्रोटीन सरंचना पर उनका प्रभाव 96

मोनिका सोढ़ी, प्रवेश कुमारी, अमित किशोर, बी पी मिश्रा, रमणीक कौर एवं मनीषी मुकेश

23. राष्ट्रीय जीन बैंक के प्रयोग व पाँच वर्ष की प्रबंधन गतिविधियों सहित आर्थिक विश्लेषण 108

प्रताप सिंह पंवार

24. राजभाषा कार्यक्रम 112

बिलाही – उत्तर भारत की घुमन्तू गाय की नस्ल

विकास वोहरा, अनिल कुमार मिश्र, साकेत कुमार निरंजन, मनोज कुमार एवं बी के जोशी
भाकृअनुप– राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल–132001

अनुवांशिक सम्पदा की पहचान, मूल्यांकन, गुण निर्धारण, संरक्षण एवं उपयोग का अध्ययन करना राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल का मुख्य उद्देश्य है। भारत में अनुवांशिक सम्पदा की पहचान, मूल्यांकन एवं गुण निर्धारण से संबंधित ज्यादातर अध्ययन अब तक कुछ जानी–मानी देशी पशु नस्लों तक सीमित रहा है। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा वे पशुधन जिन का प्रजनन क्षेत्र कुछ कम ज्ञात अथवा सीमित है, उनका भी अध्ययन अथवा मूल्यांकन एवं गुणनिर्धारण का काम शुरू कर दिया गया है। सामान्यतः पशुधन की ऐसी नस्लें जिन के बारे में कम ज्ञात हो वे प्रायः कम संख्या में पाई जाती हैं तथा उनका सीमित वितरण होता है, और ऐसी नस्लों की उपयोगिता अमूमन एक छोटे से क्षेत्र में या समाज के एक खास खंड जैसे की गुज्जर, गद्दी, बखरवाल, शेखावटी आदि समुदायों तक सीमित होती है। बावजूद इसके उनकी उपयोगिता को कम करके आंकना एक भूल होगी क्योंकि ऐसे पशुधन की उत्पादन क्षमता का यदि विस्तार से मूल्यांकन किया जाये तो संभव है की हमें उनकी कुछ छुपी हुई विशेषताएँ मिल जायें जो कि उन्हें जलवायु अनुकूल बनाती हों अथवा रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान कराती हों। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भूमि हीन पशुपालकों और मजदूरों को आजीविका प्रदान करने में पशुधन द्वारा निभाई गई भूमिका उल्लेखनीय है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि उनका भी गुण निर्धारण कर उनकी उपयोगिता को दर्शाया जाये।

बिलाही गाय, घुमन्तू पशुधन प्रबंधन के तहत पाली जाने वाली एक बहुउपयोगी नस्ल है, जिसका दूध बहुत अच्छा एवं पौष्टिक होता है। गांवो और शहरों में बिलाही गाय का दूध अच्छे दामों पर बिक जाता है। यह नस्ल खेती तथा खेती से जुड़े कामों में भी उपयोग में लाई जाती है। इस नस्ल के बैल पहाड़ी इलाकों में खेती के लिए अत्यंत ही उपयोगी होते है। बिलाही गाय का वर्गीकरण बॉस इंडिकस प्रजाति में किया जाता है। इस नस्ल को गुर्जर समुदाय के लोग पालते हैं और उनका कहना है कि उनके पूर्वजों ने इस नस्ल को विकसित किया था और यह नस्ल उन के परिवार में लगभग सौ साल से भी ज्यादा समय से मौजूद है। उनका कहना है कि बिलाही गायों को पालना, संवर्धन एवं संरक्षण करना ही उन के परिवार का व्यवसाय है और आजीविका का प्रमुख स्रोत है, जो वे कई पीढ़ियों से करते आ रहे हैं।

बिलाही गाय का प्रजनन क्षेत्र एवं संख्या

बिलाही गाय मध्यम आकार की भूरे लाल रंग की गाय है जिस का प्रजनन क्षेत्र हरियाणा राज्य का पहाड़ी क्षेत्र, शिवालिक पहाड़ियाँ, चंडीगढ़ संघ राज्य क्षेत्र, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और आस पास के राज्यों तक फैला है। उन्नीसवें पशुधन जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, हरियाणा में 8.12 लाख देशी गाय हैं, पंजाब और हिमाचल प्रदेश में क्रमशः 3.63 लाख और 11.65 लाख देशी गाय उपलब्ध हैं। बिलाही गाय की संख्या, उन्नीसवें पशुधन जनगणना रिपोर्ट में उपलब्ध नहीं है, जिसका मुख्य कारण है नस्ल वार जनगणना रिपोर्ट का उपलब्ध ना होना। लेकिन एक अनुमान के अनुसार, बिलाही गाय की एक बड़ी संख्या (20,000) इस क्षेत्र में उपलब्ध है। हालांकि, बिलाही गाय की सटीक जनसंख्या का अनुमान तो नस्लवार जनगणना द्वारा ही संभव है।

बिलाही गायों का रखरखाव

संगठित झुंड की कमी और नस्ल मान्यता के अभाव की वजह से बिलाही गायों का इनकी उत्पादन क्षमता

के लिए अतीत में मूल्यांकन नहीं किया गया। एक शोध अध्यन से पता चलता है कि बिलाही गाय को मुख्यतः यहाँ के गुर्जर चरवाहों द्वारा चराई प्रबंधन प्रणाली के तहत पाला जाता है। पशुओं को घास, पुरली और भूसा ही खिलाया जाता है। क्योंकि पशुओं को दाना खिला पाना आर्थिक दृष्टि से अधिकतर पशुपालकों के लिए लाभदायक नहीं होता। परन्तु कुछ साधन सम्पन्न पशुपालक, जिनके पास खेती योग्य जमीन है वे बरसीम, हरा चारा, गन्ने का हरा भाग, और दाना खिलाते हैं। बिलाही गायों में प्रायः कोई बीमारी नहीं पाई जाती और पशुपालक नजदीकी पशुचिकित्सालय से संक्रामक बीमारियां जैसे कि खुरपका–मुँहपका, गलघोंटू और सर्रा जैसी खतरनाक बीमारियों का टीकाकरण करवाते हैं। बिलाही गाय की प्रजनन क्षमता बहुत ही अच्छी बताई जाती है और एक वयस्क मादा लगभग हर वर्ष एक बच्चा देती है जो कि देशी नस्लों की गायो में प्रायः कम ही है। भले ही आज बिलाही गाय उत्तर भारत की एक कम ज्ञात पशु नस्ल है, लेकिन संभव है कि बदलते जलवायु और पर्यावरण के सन्दर्भ में कल बिलाही गाय एक महत्वपूर्ण देसी गाय की नस्ल के रूप में जानी जाये। हालांकि, ब्यूरो के वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययन के आधार पर बिलाही उत्तर भारत की पहाड़ियों की तलहटी में पायी जाने वाली द्विकाजी नस्ल है, अध्ययन से हमें यह भी ज्ञात होता कि सीमित संसाधन के बावजूद बिलाही नस्ल को बनाए रखने और इस नस्ल के संरक्षण में इस क्षेत्र के गुर्जरों का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी साल, जनवरी 2015 में राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल और भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली ने बिलाही गाय को भारत की अड़तीसवीं गाय के रूप में पंजीकृत कर एक द्विकाजी नस्ल का दर्जा दिया है। राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा दिया गया बिलाही गाय का अक्सेशन क्रमांक नंबर है:

इंडिया; कैटल; 0532; बिलाही; 03038

बिलाही गाय की पहचान एवं शारीरिक रचना

बिलाही गाय के शरीर का रंग प्रमुखतः भूरिया लाल और सफेद (91.5%) है, कभी–कभी, भूरे रंग के शरीर को विभिन्न रंगों जैसे कि भूरे और सफेद (6%) और भूरे रंग (2.5%) में भी देखा जा सकता है। बिलाही गाय का मुँह, गलकम्बल (गले के नीचे का लटकता हुआ झालर दार मांस) और गर्दन का निचला हिस्सा सफेद रंग का है, सफेद रंग टांगो पर और पेट के निचले भाग पर भी पाया जाता है। नाल, मुख एवं पूँछ के बाल का रंग अधिकतर काला होता है। बिलाही सममित शरीर, तंग त्वचा, पतला चेहरा, सीधे और व्यापक माथे के साथ एक मध्यम आकार की गाय की नस्ल है। दरांती आकार के सींग छोटे से लेकर मध्यम माप के होते हैं। सींग का रंग मुख्यतः काला (88%) होता है और लम्बाई 25.4 ± 2.26 सेमी होती है। लगभग12% पशुओं में भूरे रंग के सींग पाए जाते हैं जो कि ऊपर की तरफ और थोड़ा अंदर की ओर उन्मुखीकरण में घुमाव दार के साथ दरांती आकार का होता है। बिलाही गयो में मध्यम आकार का कूबड़ नर में, और छोटे आकर का कूबड़ मादा में, पाया जाता है। मादाओं में प्रमुख दूध कोशिका को विशिष्ट रूप से बाहर निकला हुआ देखा जा सकता है और मादाओं में मध्यम गोल आकार के थन पाये जाते हैं।

बिलाही नस्ल की उपयोगिता

बिलाही मादाओं में दूध उत्पादन की अच्छी क्षमता है और इनकी पहली ब्यॉंत में दूध उत्पादन लगभग 5.5 किलो प्रतिदिन तक पाया गया है और पूरी ब्यॉंत में 1071 किलो तक दुग्ध पैदा होता है। इनके दूध में वसा की मात्रा भी अच्छी (पांच से ऊपर) पायी जाती है जो कि संकर नस्ल की गायों की अपेक्षा कहीं अधिक है, बिलाही बैल कृषि क्षेत्र में परिवहन और खेती संबंधित कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। बिलाही गाय का एक साल तक का बछड़ा लगभग 1000–1200 रुपए में बिक जाता है, क्योंकि वे पहाड़ी इलाके के कृषि कार्यों के लिए उत्तम होते

चित्र 1. बिलाही गाय

चित्र 2. बिलाही सांड़

हैं। इसके अतिरिक्त इनका गोबर भी खाद के रूप में खेतों की उर्वरकता बढ़ानें में सहयोग करता है।

उपरोक्त तथ्यों से यह ही निष्कर्ष निकलता है कि बिलाही एक द्विकाजी गाय की पंजीकृत नस्ल है जिसे गुज्जर समुदाय के लोग रखते हैं एवं उनका प्रजनन कर ट्रू ब्रीडिंग स्टॉक रखते हैं, वे बिलाही गायों को पाल कर तथा उनसे जुड़े़ व्यवसाय से ही अपनी आजीविका चलाते हैं। बिलाही गाय–उत्तर भारत की शिवालिक पहाड़ियों की तलहटी में पायी जाने वाली एक घुमन्तू गाय की नस्ल है और इसका रख रखाव एवं प्रबंधन कुल मिला कर चराई तक ही सीमित है। यह नस्ल उत्तर भारत की जलवायु के अनुकूल है और इस क्षेत्र में पाई जाने वाली अन्य नस्लों (हरियाना, साहीवाल) से भी भिन्न है।

गंगातीरी–उत्तर प्रदेश की एक उत्कृष्ट गौवंशीय नस्ल

पुष्पेन्द्र कुमार सिंह, गोपाल सांखला एंव पी के सिंह

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संस्थान ब्यूरो करनाल (हरियाणा) 132001

भारत विविधताओं से भरा देश हैं। यह विविधता ही विभिन्न प्रकार की कठिन परिस्थितियों में विकास की निरंतरता को बनाये रखती है। भारत विश्व के सबसे ज्यादा पशुधन वाले देशों में एक है। दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से यह देश अन्य कई देशों से बहुत पीछे है। साठ–सतर के दशक में औसत दुग्ध उत्पादन बढाने के लिए देशी गायों के संकरण को राष्ट्रीय पशु प्रजनन नीति का हिस्सा बनाया गया, तत्पश्चात् पिछले 40–50 वर्षों में देशी गायों का अंधाधुंध संकरण कराया गया। शुरुआत में गायों के दूध में वृद्वि तो हुई परन्तु बाद में यह बात सामने आई कि इन संकर नस्ल की गायों की न सिर्फ बिमारियों से लड़ने की क्षमता कम है, अपितु ये स्थनीय जलवायु के अनुकूल भी नहीं हैं। देशी गायों के संकरण की कोई सुव्यवस्थित राष्ट्रीय नीति न होने के कारण अधिक दुग्ध उत्पादन की चाह में अधाधुंध संकरण को बढ़ावा दिया गया जिससे कई देशी गोवंश विलुप्त होंने की कगार पर पहुँच गए। भारत में 1990.8 लाख गायों के साथ विश्व की 14.5 प्रतिशत गायों की आबादी पाई जाती है, जिसमें से 1660 लाख गायें स्वदेशी प्रकार की हैं (अज्ञात)। अधिकाशं स्वदेशी गायें (80%) अवर्णित स्वदेशी या ग्रेडेड स्वदेशी प्रकार की हैं तथा सिर्फ 20 प्रतिशत गायें ही शुद्ध स्वदेशी नस्ल के रूप में राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

गंगातीरी एक परिचय

गंगातीरी एक दुकाजी नस्ल है। यह मुख्यतः पूर्वी उत्तर प्रदेश में पाई जाती है। यह मूल रूप से गंगा एंव घाघरा नदी के मध्य फैले हुए दोआब क्षेत्र से आती है। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् द्वारा इस नस्ल का पंजीकरण कर इसे भारतीय गोवंश की 39वीं नस्ल के रूप में मान्यता प्रदान की गई है।

इसका क्रमांक INDIA_CATTLE_2003_GANGATIRI_03039 प्रदान किया गया है। चूँकि यह गंगा नदी के किनारे पाई जाती है। इसलिए इसे गंगातीरी के नाम से जाना जाता है। यह क्षेत्र गर्म आद्र उष्ण जलवायु वाला है, जहाँ गर्मियों में तापमान 45 डिग्री से. तक चला जाता है एंव सर्दियों में तापमान 2 से 3 डिग्री से. तक गिर जाता है। दोआबा के इस क्षेत्र में जुलाई से सितम्बर तक का समय बाढ़ का होता है तथा प्रतिवर्ष 800–1200 मि.मी. बारिश होती हैं। गंगातीरी दुकाजी गौनस्ल होने के कारण दुग्ध उत्पादन के अलावा कृषि कार्यों के लिए भी

चित्र 1. गंगातीरी गाय

चित्र 2. गंगातीरी सांड़

पाली जाती हैं। ये गायें मुख्यतः संसाधन विहीन किसानों के द्वारा जीविकोपार्जन हेतु पाली जाती है। अतः गंगातीरी पालन में न सिर्फ इन किसानो का अपितु सम्पूर्ण क्षेत्र के विकास की अत्यधिक संभावनाएं छिपी हुई हैं। 18वीं पशुगणना 2007 के अनुसार संपूर्ण उत्तर प्रदेश में 13 लाख गंगातीरी गौवंशज पाए गए। गंगातीरी पालन के बारे में जानने के लिए पूर्वी उत्तर प्रदेश में गंगातीरी गोवंश के मूल स्थान, जिसमें वाराणसी, गाजीपुर, बलिया,एंव चंदौली जिले आते हैं (सिंह एंव अन्य 2007) में एक सर्वेक्षण किया गया। उपरोक्त जिलों में वाराणसी एंव गाजीपुर के 108 गंगातीरी पशुपालकों का पूर्व निर्धारित प्रश्नावली द्वारा साक्षात्कार किया गया।

गंगातीरी गोपालन पद्धति

यह गौवंश मुख्यतः छोटे एंव सीमांत किसानो के आलावा भूमिहीन किसानो के द्वारा जीवनयापन के लिए पाली जाती हैं। कम लागत द्वारा पाली जाने वाली ये गायें आहार के लिए मुख्यतः 5–7 घंटे की चराई तथा समयानुसार उपलब्ध घर के भोजन अवशेष पर निर्भर रहती हैं। चराई हेतु इन गायों को गाँव के आस पास के खाली पड़े खेत या अनुपयुक्त भूमि पर या दियारा के क्षेत्र में लाया जाता हैं। इसके आलावा घर पर चोकर, भूसा एंव यदि उपलब्ध हुआ तो दाना भी दिया जाता है। अधिकतर किसान अपने पशुओं को खुले स्थान पर किसी वृक्ष के नीचे रखते हैं या पशुओं के लिए छप्परदार घर बनाए जाते हैं। कुछ किसान अपने घरों के कुछ भाग में ही गायों को बांधते हैं। हालाँकि इन जगहों पर पानी के निकास की समुचित व्यवस्था तो नहीं पाई गयी किन्तु अधिकतर किसानों के गायों के रहने का स्थान साफ सुथरा एंव शुष्क पाया गया।

गंगातीरी गायों का गर्भाधान नैसर्गिक विधि द्वारा, गांवों में उपलब्ध अज्ञात आनुवंशिक क्षमता वाले किन्तु अच्छे दिखने वाले गंगातीरी सांड़ो द्वारा कराया जाता हैं। गंगातीरी गायों को 2 से 10 के झुण्ड में पाला जाता हैं। अधिकतर किसान 2–3 गायें एंव एक जोड़ी बैल पालते हैं। गायों से मिलने वाले दूध को पशुपालक अपने घर में भोजन के रूप में उपयोग करते हैं, यह दूध क्षेत्र के शाकाहारी जनसंख्या के लिए प्रोटीन का एकमात्र एंव बेहतर विकल्प है। शेष बचे हुए दूध को ये किसान बाजार में बेच देते हैं। अतः मुख्य रूप से चराई पर निर्भर होने के बावजूद गंगातीरी गायें 2.5 से 4.5 लीटर दूध प्रतिदिन देती है।

अध्ययन के दौरान ये भी पाया गया की कुछ किसान जो कि गंगातीरी गायों को नियमित रूप से दाना एंव खनिज मिश्रण दे रहे थे, उनकी गंगातीरी गायों का दूध उत्पादन 7 से 8 लीटर प्रतिदिन था। यह गंगातीरी गायों की दुग्ध उत्पादन की संभवनाओं को दर्शाता है। पशुपालकों द्वारा गंगातीरी गायों के दूध की गुणवत्ता संकर गायों के मुकाबले बेहतर बताई गयी। गंगातीरी बैल कृषि कार्य हेतु उत्तम माने जाते हैं। अतः गंगातीरी बछड़े अच्छी कीमत पर बेचे जाते हैं। छोटे एंव सीमांत किसान गंगातीरी बैलों से न सिर्फ अपनी कृषि करते हैं बल्कि किराये पर दूसरे किसानों के कृषि कार्य निपटाते हैं। गंगातीरी बैलों से कई प्रकार के कृषि कार्य, जैसे खेत की जुताई एंव बुवाई, गन्ने की पिराई इत्यादि लिए जाते हैं। इसके

चित्र 3. गंगातीरी गायों का खुला आवास

चित्र 4. चारागाह क्षेत्र में गंगातीरी

चित्र 5. गंगातीरी गाय का आवास

चित्र 6. गंगातीरी जीविकोपार्जन का मुख्य साधन

आलावा बैलगाड़ी से कई सामानों की ढुलाई भी की जाती है। गंगातीरी गायें सरल स्वभाव की होती हैं। इनका दुग्ध काल 6 से 8 महीने तथा ब्यांत अंतराल 12 से 15 महीने पाया गया जबकि शुष्क काल 5 से 6 महीने का पाया गया है। गंगातीरी गायें अपने वातावरण के अनुसार पूर्णतया अनुकूलित होती है। जहाँ एक और ये गौनस्ल गर्मियों में अत्यधिक गर्मी तथा सर्दियों में अत्यधिक ठण्ड सह सकती है वहीं दूसरी और इनमें बिमारियों एंव परजीवियों से लड़ने की अदभुत प्रतिरोधक क्षमता भी होती हैं।

गंगातीरी पालने वाले किसान बीमार पशुओं के प्राथमिक उपचार के लिए मुख्यतः घरेलु चिकत्सा उपायों पर निर्भर करते हैं ।

किसान गंगातीरी गायों का पालन कई पीढ़ियों से अपनी अजीविका के लिए करते रहे हैं। तथा इस क्षेत्र के किसानो के लिए गंगातीरी पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है। गंगातीरी पशुपालन से प्राप्त होने वाले दूध के अलावा गोबर से उपले बनाए जाते हैं। ग्रामीण गोबर के उपले खाना बनाने के लिए उपयोग करते हैं क्षेत्रीय ईंट निर्माता गोबर के उपलों को ईंट पकाने के लिए करते हैं। अतः इन उपलों को बेच कर गंगातीरी पालकों को आमदनी भी होती है। इसके आलावा गोबर की खाद भी खेतों में उर्वरकों की आवश्यकता को काफी हद तक कम कर देती है। गंगातीरी गायों से मिलने वाले दूध, दुग्ध उत्पादों जैसे खोया, दही इत्यादि तथा उपलों को बेचकर गंगातीरी पालक किसान अपनी आमदनी कमाते हैं। इसके आलावा गंगातीरी बैल कृषि कार्यों हेतु दूसरे किसानों द्वारा किराये पर लिए जाते हैं। इस तरह गंगातीरी गायों को पालकर किसानो की बेहतर आय हो जाती है।

निष्कर्ष एंव संतुतियाँ

गंगातीरी गौ–नस्ल में न सिर्फ एक बेहतर दुकाजी गौ–नस्ल के रूप में विकसित होने की क्षमता है बल्कि इसमें गंगातीरी गौपालकों एंव क्षेत्रीय किसानो के सम्पूर्ण एंव सुदृढ़ विकास की असीम सम्भावना छिपी हुई है। चूँकि इस गौवंश की अपनी एक विशिष्ट पहचान है एंव छोटे एंव सीमांत किसानों के जीविकोपार्जन में गंगातीरी पशुओं का महत्वपूर्ण योगदान है, अतः इस अध्ययन के आधार पर निम्न संतुतियां की जा सकती हैं।

1. गंगातीरी को राज्य कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम में शामिल करना चाहिए।

चित्र 7. कृषि कार्य हेतु गंगातीरी बैल अच्छे माने जाते हैं

2. गंगातीरी गौवंश के अनुवांशिक उत्थान के लिए उनकी प्रबंधन प्रणाली में उचित कार्यक्रम बनाकर क्रियान्वित करना चाहिए।

3. गंगातीरी पशुपालकों को स्वयं सहायता समूह बनाने हेतु प्रोत्साहित करना चहिए।

4. क्षेत्रीय सहकारी समितियों की क्षमता का विकास किया जाना चहिए जिससे गंगातीरी गौपालक इनसे अधिकाधिक जुड़े एंव लाभ प्राप्त कर सके। साथ ही गंगातीरी दूध के विपणन में गौपालकों को अतिरिक्त लाभ दिया जाना चाहिए।

5. गंगातीरी गायों को चराई हेतू चारागाह उपलब्ध करवाने एंव इसका प्रबंधन करने की दिशा में कार्य किये जाने की तत्काल आवश्यकता है।

आभार

इस अध्ययन के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध करने हेतु लेखकगण निदेशक, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संसथान, करनाल के प्रति आभार प्रकट करते हैं। लेखकगण डेरी प्रसार प्रभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसन्धान संस्थान, करनाल के वैज्ञानिकों, उतरप्रदेश सरकार के वाराणसी एंव गाजीपुर जिले के पशुचिकित्साधिकारियों एंव उनके अधीनस्थ सभी कर्मचारियों के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं। जिन्होंने सर्वेक्षण के समय अमूल्य सहयोग प्रदान किया।

सन्दर्भ

1. ओम प्रकाश सिंह, प्रदीप कुमार सिंह, पी.के. सिंह, गुरमेज सिंह एंव एस पी एस अहलावत. 2006. कैटल जेनेटिक रिसोर्सेज आफ इंडिया–गंगातीरी। भाकृअनुप के पशु आनुवंशिक संसाधन पर नेटवर्क परियोजना के अंतर्गत प्रकाशित।

2. अज्ञात. 2007. 18वीं पशुगणना। भारत सरकार के पशुपालन, डेयरी एंव मत्स्य विभाग द्वारा प्रकाशित। नई दिल्ली (भारत)।

3. पी के सिंह,जी के गौड़, आर के पुंडीर एंव अवतार सिंह. 2007. कैरेक्टराईजेशन एंड ईवेल्यूवेशन आफ गंगातीरी कैटल ब्रीड़ इन ईटस नेटिव ट्रेक्ट. इंडियन जर्नल आफ एनिमल साइंस 77 (1): 66–70.

4. पुष्पेन्द्र कुमार सिंह. 2013. सस्टेनेबिलिटी आफ गंगातीरी ब्रीड़ रियार्ड बाई डेयरी फार्मर्स इन इस्टर्न उत्तर प्रदेश, एन डी आर आई करनाल (हरियाणा) की प्रस्तुत एम्वीएससी शोध ग्रन्थ।

पंजाब के किसानों की आजीविका में सहायक कजली भेंड़ का अध्ययन

अनिल कुमार मिश्र, के एन राजा, विकास वोहरा, संजीव सिंह एंव यशवंत सिंह

भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा)–132001

हमारे देश में भेड़ों की कुल संख्या लगभग 65.07 मिलियन है, जिसमें से लगभग 50 प्रतिशत भेड़ें अवर्णित है। देश की अवर्णित एवं कम ज्ञात नस्लों का अध्ययन हमारे संस्थान का महत्वपूर्ण अंग है। इसी तथ्य को मद्देनजर रखते हुए पंजाब (भारत) की कम ज्ञात नस्ल 'कजली' का अध्ययन किया गया है। अध्ययन करने के लिए पंजाब के संगरूर, बरनाला, लुधियाना, मोगा, फिरोजपुर एंव भटिंडा जिलों के 47 गांवों में सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के दौरान पूर्व निर्धारित प्रश्नावली के आधार पर कजली भेड़ों के प्रबंधन, उपयोगिता, शारीरिक बनावट एंव उनके उत्पादन स्तर सम्बन्धी आंकड़ो को एकत्रित करने के लिए वर्ष 2013 से 2015 के दौरान 67 भेड़ पालकों से साक्षात्कार किया गया ।

वितरण एंव उपयोगिता

कजली भेड़ का वितरण मुख्य रूप से पंजाब (भारत) के संगरूर, बरनाला,लुधियाना, मोगा एंव आस–पास के जिलों में है। यह भेड़ अपनी शारीरिक बढ़ोतरी एंव वजन के कारण किसानो में काफी लोकप्रिय है। भेड़ पालकों से प्राप्त जानकारी के अनुसार 'कजली' का नामकरण आँखों में लगाए जाने वाले 'काजल' एंव काले रंग के कारण हुआ है। यह भेड़ मुख्यतः मांस उत्पादन के लिए पाली जाती है। एक अनुमान के अनुसार इस क्षेत्र में कजली भेड़ों की लगभग 6–8 हजार संख्या उपलब्ध है लेकिन वास्तविक संख्या की गणना, जनगणना द्वारा ही संभव है।

शारीरिक विशेषताएं

पंजाब (भारत) की कजली भेड़ की दो किस्में पाई जाती हैं, जिनका वर्गीकरण उनके शारीरिक रंग के आधार पर किया गया है:

1. काली कजलीः इनका पूरा शरीर काला या काले भूरे रंग का होता है, तथा इनकी पूंछ का अंतिम सिरा (लगभग 42%) सफेद होता है। इस सफेद सिरे की लम्बाई 6 से 55 से.मी. तक होती है।
2. सफेद (चिट्टी) कजलीः इनका पूरा शरीर सफेद रंग का होता है, लेकिन चेहरे एंव कान पर काले या काले–भूरे रंग के धब्बे पाए जाते हैं, जिनका वितरण चेहरे एंव कान पर विभिन्न स्तर का होता है। कुछ भेड़ों का तो 95 प्रतिशत हिस्सा धब्बेदार होता है। इनका शरीर आयताकार एंव मजबूत होता है । नाक रोमन प्रकार की होती है एंव पूंछ की लम्बाई औसतन 55 से.मी. होती है, जो की कई भेड़ों में जमीन तक जाती है। कुल मापी गई लगभग

चित्र 1 सफेद कजली भेंड़

चित्र 2 काली कजली भेंड़

चित्र 2 कजली नर

चित्र 4. कजली भेंड़ की विशेषताए

65% भेड़ें रोमन नाक वाली पाई गई। इनके कान लंबे तथा लटके हुए होते हैं। दोनों लिंगो में सींग नहीं होते हैं लेकिन कुछ किसानों ने नरो में सींग होना बताया है। इस भेड़ के शरीर का सर्वाधिक भाग ऊन से ढका होता है। इस नस्ल के व्यस्क नर का शारीरिक भार30 से 76 कि.ग्रा. तक एंव मादा का 26 से 66 कि.ग्रा. तक होता है। नर की औसत लम्बाई 79.92 से.मी. एंव ऊंचाई 78.84 से.मी. होती हैं तथा मादा पशुओं की लम्बाई तथा ऊंचाई क्रमशः 72.69 एंव 72.18 से.मी. होती है। इनसे प्राप्त ऊन मध्य्यम श्रेणी की होती है।

प्रबंधन

यह भेंड़ मुख्यतः चराई पर पाली जाती है। भेड़ें लगभग रोज 5–10 कि.मी. तक चरने जाती हैं तथा लगभग 8–10 घंटे तक प्रतिदिन चरती हैं। भेंड़ों के झुण्ड का आकार औसतन 56.45 होता है, जिसमें 50.94 कजली भेंड़ होती हैं एंव 5.51 अन्य भेड़ें होती हैं। कजली भेड़ों के झुण्ड में औसतन 1.97 नर, 36.06 मादा एंव 12.91 मेमने होते हैं। अधिकतर किसान इनके लिए अलग पक्का घर बनाते हैं जो आधे से अधिक खुले प्रकार का होता है। भेड़ों का आवास कच्चा एंव पक्का दोनों प्रकार का होता है। भेड़ों का पोषण मुख्यतः चराई पर निर्भर करता है लेकिन लगभग 8 प्रतिशत भेड़ पालक प्रजनन के समय गर्भवती मादाओं एंव मेमनों को दाना खिलाते हैं तथा लगभग 67 प्रतिशत किसान क्रांतिक अवस्था (प्रजनन एवं ब्याने के समय) में चारा भी खिलाते हैं। नर मेमनों को 3 से 4 सप्ताह की उम्र में बेच दिया जाता है। लेकिन सभी भेड़ पालक 1 से 2 मेमनों को प्रजनन नर बनाते हैं। इस भेंड़ की मुख्य बीमारियाँ पी पी आर, खुरपका–मुंहपका, गिड, पॉक्स एंव न्यूमोनिया आदि

चित्र 5 कजली भेड़ की आवास व्यस्था

हैं। इन्हें किसान खुरपका–मुंहपका, एच.एस., पॉक्स एंव एन्टेरोटॉक्सीमिया के टीके लगवाते हैं। इसके इलावा कीड़े मारने की दवा भी किसान पिलवाते हैं। मेमनों में मृत्यु दर औसतन 10% एंव वयस्क में 5% से कम होती है।

प्रजनन

इस नस्ल की भेड़ें मुख्यतः जनवरी से मार्च एंव अगस्त से अक्तूबर माह में प्रसव करती हैं। दो प्रसव के बीच का अन्तराल लगभग 8–12 माह का होता है। मादा भेड़ सामान्यतः 12–18 माह की उम्र में प्रजनन योग्य हो जाती हैं ।इस समय मादा का शारीरिक भार 25–30 कि.ग्रा. का होता है। समूह का औसत लैम्बिंग प्रतिशत (बच्चा जन्मने की दर) 80 से 90 प्रतिशत होता है। समूह में लगभग 30 मादा पर 1 नर होता है। अधिकतर भेड़ पालकों के अनुसार 5–10 प्रतिशत भेड़ें जुड़वाँ मेमनों को जन्म देती हैं ।नर 12–15 माह में प्रजनन योग्य हो जाता है। सभी किसान प्राकृतिक ढंग से नर व् मादा का समागम करवाते हैं, एक झुण्ड में किसान नर को 2–3 वर्ष तक प्रयोग करतें हैं ।मादा को 7–8 वर्ष की उम्र के पश्चात् बेच दिया जाता है। मेमनों का जन्म के समय औसतन शरीर भार लगभग 3.92 कि.ग्रा. होता है। अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि कजली भेड़ बाह्य शारीरिक लक्षणों के आधार पर क्षेत्र में पाई जाने वाली अन्य नस्लों से भिन्न है। उपलब्ध पुस्तकों एंव पाठ्य सामग्रियों में भारत में पाई जाने वाली कजली भेड़ के ऊपर साहित्य लगभग नगण्य है तथा अभी तक इसके विकास के लिए कोई कार्यक्रम भी नहीं चलाया गया है। अतः इस बात की आवश्यकता है की इस बहुमूल्य भेड़ को लुप्त होने के पूर्व इसका सुव्यवस्थित अध्ययन, संरक्षण एवं विकास किया जाये एंव इसका नस्ल पंजीकरण भी किया जाये।

आभार

इस परियोजना के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराने हेतु लेखकगण निदेशक भाकृअनुप–रा.प.आ.सं. ब्यूरो करनाल के प्रति आभार व्यक्त करतें हैं। लेखकगण पंजाब पशुपालन विभाग के निदेशक, उप निदेशक, संगरूर, बरनाला, लुधियाना व मोगा एंव इन जिलों के अन्य पशुचिकित्सकों, भेड़ इन्स्पेक्टर एंव सभी कर्मचारियों के प्रति आभार–व्यक्त करते हैं जिन्होंने सर्वेक्षण के दौरान पर्याप्त सहयोग प्रदान किया। इसके अतिरिक्त हम उन सभी भेंड़ पालकों का भी आभार व्यक्त करते हैं जो वर्षों से इस महत्वपूर्ण भेंड़ को पालते आ रहे हैं।

राजस्थान का गौरव सिरोही बकरी व उसका पालन

अरुण कुमार, सिद्धार्थ मिश्रा, इन्द्रसेन चौहान, एस एम के नकवी
भाकृअप–केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर–30450, (राज.)

बात चाहें दूध की हो, चाहें माँस की, हमारे देश के गरीब किसानों के लिए बकरी से बेहतर कोई दूसरा पशु नहीं है। आज भी बकरी पालन व्यवसाय किसानों को निश्चित आय का साधन होने के साथ–साथ दूध एवं माँस की पारिवारिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करता हैं। बकरी के इन्ही गुणों के कारण इसे गरीब की गाय कहा जाता है। भारत में पाई जाने वाली सभी प्रकार की कठिन वातावरणीय परिस्थितियों एवं उचित आहार के अभाव में भी बकरियों में उत्पादन करने की विलक्षण क्षमता होती है। भेड़–बकरी का जीवन चरागाह में ही व्यतीत होता है। बकरी पालन का महत्वपूर्ण एक अंग यह भी है कि वह मानव खाद्य पदार्थों पर निर्भर न रहकर भी मानव उपभोग के लिए उत्पादन करती हैं।

चित्र 1. सिरोही बकरी पालक

बकरी पालन, छोटे व सीमान्त किसानों, भूमिहीन मजदूरों एवं ग्रामीण महिलाओं के लिए जीविकोपार्जन का एक बहुमूल्य साधन होने के साथ–साथ वर्षभर रोजगार के अवसर भी प्रदान करता हैं। बकरी पालन को अपनाकर वे अपनी आर्थिक स्थिति को काफी हद तक सुधार सकते है, क्योंकि बकरी–पालन से निम्न लाभ हैं –

- बकरी एक बहुपयोगी पशु है इससे दूध, माँस, खाल, बाल, खाद आदि प्राप्त होते हैं।
- इसका मांस अन्य मांस की तुलना में अधिक पंसद किया जाता है।
- यह एक बार में एक से अधिक बच्चें दे सकती है।
- बहुत कम खर्चे में पाली जा सकती है।
- साल भर परिवार को रोजगार प्रदान करती है।
- विपरीत परिस्थितियों में भी उत्पादन करने में सक्षम है।
- कम पूँजी विनियोजन के नाते आर्थिक रुप से पिछडी महिलाओं के लिए बकरी पालन एक वरदान सिद्ध हो सकता है क्योंकि बड़े पशुओं की तुलना में एक महिला भी इन पशुओं के एक झुण्ड की आसानी से सार–संभाल कर सकती है।

देश की प्रमुख बकरियों की नस्लों में से, सिरोही बकरी देश के उत्तरी–पश्चिमी क्षेत्र की जानी पहचानी नस्ल है। इसका उद्‌गम स्थान राजस्थान राज्य के सिरोही जिले से माना जाता है जिसके नाम पर इस नस्ल का नामकरण हुआ है। यहाँ से इस नस्ल की बकरियाँ राज्य के अर्ध–शुष्क क्षेत्र, अरावली पहाड़ियों, मध्य एवं दक्षिणी क्षेत्र में फैल गई हैं। सिरोही नस्ल की बकरी राजस्थान राज्य से लगने वाले राज्य उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और

चित्र 2. बकरी झुंड का चरना/ बकरी चराना

गुजरात में भी पाली जा रही हैं। सिरोही बकरियाँ राज्य में दूध व मांस के लिए पाली जाती है व सबसे अधिक पसंद की जाने वाली बकरी है। मरणोपरान्त भी इसकी खाल विभिन्न प्रकार से काम में ली जाती है। यह गठे आकार वाली मध्यम ऊँचाई की एक दुकाजी बकरी की नस्ल है। प्रायः इनका रंग भूरा होता है व कुछ बकरियों के शरीर पर हल्के व गहरे रंग के भूरे सफेद धब्बे भी पाये जाते हैं। इस नस्ल की बकरियों में गले के नीचे कलंगी, एक मांसल भाग वैटल होता है, जो इस नस्ल की एक विशेष पहचान भी है। इनके सींग आमतौर से छोटे घुमावदार व ऊपर की ओर मुड़े होते हैं। यह नस्ल दूध एवं मांस के लिए पाली जाती है एवं पशु पालक इस नस्ल को बहुत पसंद करते है। इसका मुख्य कारण इसका चमकता हुआ रंग, दिखने में साफ सुथरी, सुंदर व अच्छी मात्रा में दूध और मांस देने की क्षमता है। यह नस्ल अपने औसतन 180 दिनों के दुग्धकाल में 140 किग्रा. तक दूध दे देती है। इनका वर्ष भर में शारीरिक वजन 28–30 किलो तक पहुँच जाता। यह राजस्थान व आस–पास की जलवायु के लिए अति उत्तम नस्ल है। इसमें कम से कम बीमारियाँ होती है और यह अपनी खाद्य आवश्यकता साधारण जंगलों एवं पेड़ों की पत्तियों से पूर्ण कर लेती है। सिरोही बकरियाँ प्रत्येक दृष्टि से अच्छी होने की वजह से इसको सभी वर्ग के लोग पसंद करते हैं और अपनी आवश्यकता के अनुसार पालते हैं। यह नस्ल राज्य के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग नाम से जानी जाती हैं, अजमेर जिले में परबतसरी, सिरोही जिले में सिरोही और देवगढ़ में देवगढ़ी कहलाती है। यह नस्ल राजस्थान के सिरोही, पाली, अजमेर, नागौर, सीकर,

चित्र 3. बकरियों का बाड़ा

झुण्झुनू, जयपुर, टोंक, सवाइमाधोपुर, कोटा, राजसमंद, बांसवाडा, उदयपुर आदि जिलों में मुख्य रुप से पायी जाती है। साधारणतया: किसान 10–50 बकरियों को अपनी आवश्यकता या साधनों की उपलब्धता के अनुसार पालते हैं। अधिकतर ये बकरियाँ चराई पर ही पाली जाती है। जो किसान आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते है, वे चराई के साथ–साथ विशेष परिस्थितियों में दाना चारा भी देते है। प्रजनन हेतु नर बकरों को 1–2 वर्षों के लिए बकरियों को साथ रखते हैं और बाद में बदल देते हैं। अधिकतर किसान वर्ष भर में मेमनों की एक फसल लेना ही उचित समझते हैं। अच्छी चराई एवं खिलाई–पिलाई से 12–15 प्रतिशत बकरियों से दो बच्चे मिल जाते हैं। साधारणत: किसान अपने घर के पिछवाड़े में बाड़ लगा हुआ एक खुला बाड़ा बना लेते हैं और इसी में इनको रखते है। खराब मौसम, बरसात आदि से बचाव के लिए एक कच्चा छप्पर भी डाल देते हैं। सिरोही नस्ल के अच्छे पशु नागौर, अजमेर, देवगढ़, पाली, सिरोही, उदयपुर, टोंक, जयपुर, सवांइमाधोपुर आदि से सटे क्षेत्रों में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त राजकीय पशुधन प्रक्षेत्र, फतहपुर, कृषि विश्वविद्यालय वल्लभनगर, उदयपुर, केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर की प्रसिद्ध सिरोही बकरी इकाई, केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, मखदूम, मथूरा आदि फार्मो पर भी पाले जा रहे हैं। केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर ने सिरोही नस्ल की उत्पादन क्षमता एवं इसकी अत्यधिक मांग को देखते हुऐ इसके आनुवंशिक सुधार एवं सरंक्षण हेतु इस नस्ल का अखिल भारतीय समनव्य परियोजना कार्यक्रम में सम्मिलित कर रखा हैं जहां पर इस नस्ल के उन्नत पशु रियायती किताबी कीमत पर बकरी पालकों के लिए नस्ल सुघार हेतु उपल्ब्ध रहते हैं व प्रतिवर्ष 150–200 उन्नत पशुओं को किसानों, विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से बकरी पालको को वितरीत किये जाते हैं।

सिरोही बकरियों की उत्पादकता

औसत शारीरिक भार (किग्रा)

- जन्म पर — 3.3
- 3 महीने पर — 15.0
- 6 महीने पर — 22.0
- 12 महीने पर — 32.0

प्रतिदिन वजन में वृद्धि (ग्राम)

- 0–3 महीने — 115.0
- 3–12 महीने — 60.0
- वयस्क नर का वजन (चार दांत) — 55.0 किग्रा.
- वयस्क मादा का वजन (चार दांत) — 38.0 किग्रा.
- औसत दूध उत्पादन क्षमता (किग्रा.)
  - 90 दिनों पर — 92.0
  - 150 दिनों पर — 125.0
  - 190 दिनों पर — 140.0

प्रजनन सम्बंधी उपलब्धियाँ

- पहली बार ग्याभन होने की औसत उम्र (दिनों में): 580
- पहली बार ब्यानें की औसत उम्र (दिनों में): 730
- दो बच्चें देने की क्षमता (%): 15.0
- वयस्क बकरियों की जीवित रहने की दर (%): 98

दुधारू सिरोही बकरियों की विशेषताऐं

एक व्यवसायिक बकरी पालन को लाभदायक बनाने के लिए सही नस्ल के उत्तम पशुओं के शारीरिक अभिलक्षण की जानकारी होना अति आवश्यक है:–

- अच्छी बकरी को अपनी नस्ल के अनुरूप होना चाहिए तथा स्वभाव में सरल व सीधा होना चाहिए।
- सिर लम्बा, पतला एवं सामान्य आकृति का हो।

चित्र 4. वयस्क सिरोही बकरी

- पीठ सीधी, मजबूत एवं मांसल हो।
- अयन सुडौल, बड़ा, लचीला और गाँठ रहित, ठीक से जुड़ा हुआ हो तथा यह नीचे लटकने के बजाय आगे की तरफ होना चाहिए ताकि चराई के दौरान कांटे चुभने की समस्या न आये।
- अयन दुग्घ दोहन के बाद पर्याप्त सिकुड़ने वाला तथा मुलायम हो। थन बड़े, गोलाई लिए हुए, मुलायम, गाँठ रहित व समान बनावट के होने चाहिए। दूध निकाल लेने के पश्चात् स्तन मुलायम तथा लचीले हो जाने चाहिए।
- दुधारू बकरी का बड़ा आकार इस बात का संकेत देता है कि पशु अपने जीवन निर्वाह एवं उत्पादन हेतु अधिक आहार का उपयोग कर सकता है। शरीर के आकार में लंबाई, गहराई और चौड़ाई का विशेष योगदान होता है। पशु के सीने का निचला भाग काफी गहरा होना चाहिए तथा पिछला भाग अगले भाग से भारी होना चाहिए। एक अच्छी बकरी के शरीर पर तीन त्रिकोण 'V' की आकृति बनना गुणकारी माना जाता है। बकरी में यह तीनों त्रिकोण जितने अधिक स्पष्ट होते हैं वह उतनी ही दुधारू होती है।
- **बगल का त्रिकोण**: पिछले पैरों के पास सर्वाधिक चौड़ा व गले के पास सबसे पतला।
- **ऊपर का त्रिकोण**: पुटठ्ों के मध्य अधिक चौड़ा व कंधे के पास कम चौड़ा।
- **सामने का त्रिकोण**: दोनों अगले पैरों के मध्य सबसे अधिक चौड़ा व कंधे के पास कम चौड़ा होता है।

बकरी पालन व्यवसाय मुख्य रूप से देश के गरीब एवं सीमान्त किसानों, भूमिहीन मजदूरों, पढ़े–लिखे बेरोजगारों आदि द्वारा करीब–करीब पूरे देश के शुष्क से अर्द्वशुष्क व पहाड़ी क्षेत्रों में माँस, दूध, बाल, खाल आदि मुख्य पशु उत्पादों के लिये अपनाया जा सकता है। बकरी पालन का उद्देश्य, नस्ल, प्रजनन, आहार, रख–रखाव, आदि की व्यावहारिक जानकारी के बाद ही बकरी पालक उचित

चित्र 5. बकरियों की आवास व्यवस्था

लाभ ले सकता है, अन्यथा ''कम लागत ज्यादा मुनाफा'' वाली कहावत उल्टी पड़ सकती है, अर्थात बकरी पालक को अपने उद्देश्य के अनुसार बकरी की अच्छी नस्ल रखनी चाहिए तथा फिर उसके खान–पान, रख–रखाव व प्रजनन पर उचित ध्यान देना चाहिए।

आवास व्यवस्था : पहले गाँव में लोग एक या कुछ बकरियाँ पालते थे, जिससे वह अपने परिवार की आवश्यकताओं की दूध एवं मांस की पूर्ति कर लेते थे। इन बकरियों को वह लोग अपने घर में ही रखते थे। अब बकरी पालन एक व्यवसायिक रूप लेता जा रहा है।

चित्र 6. बकरी पालन की उपयोगिता

उन्नत बकरी पालन के लिये रेवड़ को सर्दी, गर्मी एवं बरसात से बचाने हेतु मौसम के अनुकूल आवास व्यवस्था करना अति आवश्यक है। अर्द्धखुला बाड़ा बकरियों के आवास हेतु एक आदर्श व्यवस्था है। रेवड़ के लिए आवश्यक क्षेत्रफल का ढ़का बाड़ा जिसमें प्रत्येक पशु को 10–12 वर्ग फुट स्थान प्राप्त हो सके, बनाना चाहिए (60x20 फुट – 100 बकरियों के लिये)। बकरियों के लिये आधा ढ़का व उससे दुगना खुला बाड़ा ही आदर्श बाड़ा हो सकता है जिसमें आवश्यकतानुसार बकरियॉ छपे/ढ़के हुए भाग का स्वेच्छानुसार बाहर व भीतर घूम–घूम कर आराम से सर्दी या वर्षा में उपयोग कर सके। बाड़े का आधा भाग छप्पर या एस्बेस्टस की चद्दरों से ढ़का होना चाहिये जिसको सर्दी या गर्मी में उपयोग कर सके, खाली खुले बाड़े को तार या जाली से घेर कर बांट सकते है। बाड़े की छत पर 2 से 3 इंच मोटा छप्पर डाल देने से गर्मी व सर्दी से काफी राहत मिलती है। हमारे देश की जलवायु के लिए पूर्व–पश्चिम दिशा में बनाया गया बाड़ा उत्तर–दक्षिण दिशा वाले आवासों से अधिक आरामदायक होता हैं। बाड़े की दीवारें जमीन से लगभग 80 सेमी. ऊँचाई तक ईंटों की बनाकर उसके बाद छत तक जाली लगानी चाहिए। खुले हुए भाग में और बाड़े के आस–पास वाली जगह पर छायादार वृक्ष जैसे– अरडू, नीम आदि लगाने चाहिए, जो गर्मी के दिनों में बाड़े को ठंडा रखनें में मदद करते हैं तथा साथ ही समय–समय पर चारे की आवश्यकता को भी पूरा करते है। मेमने वाले बाड़े में सूखी घास का बिछौना भी होना चाहिए जिससे वह मिट्टी न खा सकें।

प्रजनन व्यवस्था : नियमित पुनरोत्तपत्ति ही बकरी पालन का मूलाधार है। समुचित मात्रा में पोषण उपलब्ध होने पर बकरियों को वर्ष में कभी भी ग्याभिन करवाया जा सकता है। परन्तु ग्याभिन कराते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे पैदा होते समय मौसम न अधिक गर्म हो और न अधिक ठंडा हो। प्रायः बकरी 18 से 21 दिन के अन्तर से गर्मी में आती है। इनका गर्भ काल 150 दिन का होता है। ग्याभिन कराने के लिए उत्तम नस्ल का हृष्ट–पुष्ट स्वस्थ बकरा ही प्रयोग में लाया जाना चाहिए। प्रजनन के लिए बकरा चुनते समय ध्यान रखना चाहिए कि पैदा हुए मेंमनों की पैदावार अधिकांश उसी पर ही निर्भर करती है। गर्भित बकरियों को अलग से साफ स्वच्छ एवं नमी रहित स्थान पर रखना चाहिए तथा उनके आवास में चारे–दाने एवं पानी हेतु पर्याप्त बर्तन/पात्र की व्यवस्था होनी चाहिए। बाड़े की मिट्टी को खोदकर दो तीन महीने के अन्तराल पर चूना मिलाते रहने से परजीवियों का विकास कम हो जाता है। एक बकरे से एक वर्ष में 25–30 बकरियों का प्रजनन आसानी से कराया जा सकता है। बकरी पालक को चाहिए कि वह अपने रेवड़ में 100 बकरियों के पीछे 4–5 बकरे रखें तथा 5 प्रतिशत उनको बदलने के लिये

चयन करके, अनावश्यक बकरों को बेच दे जिससे उसको आर्थिक लाभ होगा।

चित्र 7. सिरोही बकरा

बकरी के बच्चों की देखभाल: उचित देखभाल के अभाव में बच्चों में प्रथम सप्ताह की आयु से एक माह की आयु तक मृत्यु दर 25–50 प्रतिशत तक पहुंच जाती है। बकरी के बच्चे को जन्म के पश्चात सबसे पहले साफ व सूखे कपड़े से साफ कर देना चाहिए जिससे वह अच्छी तरह से सांस ले सकें। बच्चे के नाल को उसके शरीर से जुड़े हुए स्थान से लगभग 3–4 सेमी. छोड़कर तेज धार वाले चाकू से काटकर टिंचर आयोडिन लगाना चाहिए। मेंमनों के पैदा होते ही बकरी का प्रथम दूध (खीस) पिलाना आवश्यक है। बकरी के बच्चों को रखने का स्थान साफ, सूखा एवं हवादार होना चाहिए। बच्चों को बाड़े में रखने से लगभग 15 दिन पूर्व फर्श की कम से कम 6 इंच खुदाई करके उसमें चूना और बी.एच.सी. पाउडर मिला देना चाहिए। मौसम अनुसार बच्चों के आवास में ठंडी हवा व ठंड से बचाव हेतु सूखी घास–फूस की बिछावन व छप्पर की व्यवस्था होनी चाहिए। बकरी के बच्चों मे पाये जाने वाले अन्तः परजीवियों को समाप्त करने के लिये डिवर्मिंग व बाह्य परजीवियों को मारने के लिये डिपिंग की जाती है। क्रीप मिश्रण बकरी के बच्चों के 15 दिन की आयु से 3 माह की आयु तक दिया जाता है। इसमें 16–18 प्रतिशत पाच्य कच्ची प्रोटीन, 70–72 प्रतिशत कुल पाच्य पोषक तत्व, खनिज मिश्रण एवं विटामिन भी उचित मात्रा में होना आवश्यक है।

आहार व्यवस्था: पशुओं द्वारा अधिक उत्पादन तथा उनके स्वस्थ जीवन निर्वाह हेतु यह अति आवश्यक हो जाता है कि उनकी आहारीय व्यवस्था का उचित प्रबन्ध हो अन्यथा उनकी आहारीय व्यवस्था में कहीं पर भी आई कमी का पशुओं की वृद्धि तथा उनके उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। बकरी अपने शरीर के वजन का 3–4 प्रतिशत तक सूखा पदार्थ प्रतिदिन आराम से ग्रहण कर सकती है, जिसे सूखे व हरे चारे तथा दाने से पूरा किया जाता हैं उदाहरणार्थ 30 किलोग्राम देहभार वाली बकरी को 950 से 1000 ग्राम शुष्क पदार्थ की आवश्यकता होती है जिसे 3.0 से 3.5 किलोग्राम हरे चारे (30 प्रतिशत शुष्क पदार्थ) व 300 ग्राम अनाज द्वारा पूरा किया जा सकता है। बकरियों को घूम–घूम कर तथा चुन–चुन कर झाड़ियों एवं वृक्षों की पत्तियों को पिछली टांगों पर खडें होकर खाना अत्यन्त प्रिय है। बकरियां अपने भोजनन के लिए अधिकतर पेड़ों के पत्ते, झाड़ियों एवं चरागाह में मिलने वाली घासों पर निर्भर करती है और यह सब वह चरागाह में कम से कम 10–15 किमी. प्रतिदिन घूम–घूम कर प्राप्त करती है। बकरी कुल चारे का 70–80 प्रतिशत हिस्सा चारागाह से प्राप्त करती है एवं लगभग एक किलो चारा व कुल दाने की मात्रा उनको बाड़े पर ही दी जाती है। बकरियों के लिए पेड़–पौधों की पत्तियां व फलियां, ताजे हरे व प्रोटीन युक्त चारे का उत्तम साधन है, इनकों सुखाकर भी बकरियों को खिलाया जाता है। बकरियों का यह प्रिय आहार है।

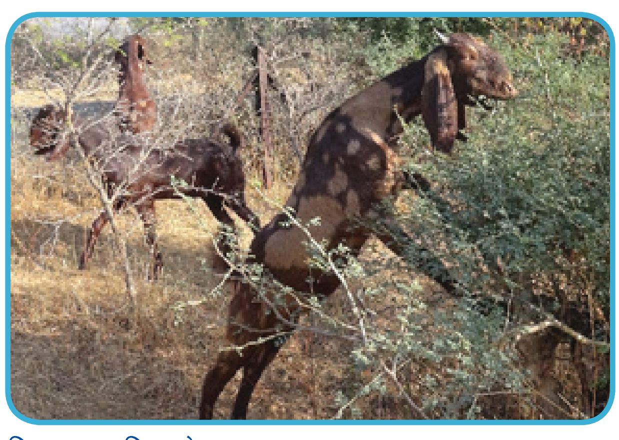

चित्र 8. प्राकृतिक भोजन व्यवस्था

चित्र 9. बाड़े में भोजन व्यवस्था

रोगों की रोकथामः "रोकथाम उपचार से उत्तम है" इस कहावत का भाव यह है कि अपने पशुओं के चारो ओर एक ऐसा सुरक्षा कवच बनाना चाहिए कि जिसमें रोग उत्पन्न करने वाले कारक रेवड़ से दूर रहें। इस नस्ल की बकरी बहुत ही स्वस्थ्य तथा चुस्त होती है। रोगों से बचाव के लिए समय–समय पर रोग निरोधक टीके लगवाना आवश्यक है। खाज, जूँ, चीचड़ और इनसे उत्पन्न पीलिया रोग की रोकथाम के लिए वर्ष में 2 बार दवा के पानी से स्नान कराना अति आवश्यक है। बाड़ों की नियमित सफाई व उनको कीटाणु रहित रखना चाहिये। वर्ष में कम से कम एक बार बाड़े की मिट्टी खुदवाकर बदल देना चाहिये और उसमें चूना मिला देना चाहिये व दीवारों पर पैराथियान आदि का बुरकाव तथा कभी–कभी नीम की पत्तियों का धुआँ भी कर देना चाहिए। कुछ समय तक पशुओं को इस तरह के बाड़े में नहीं रखना चाहिए ऐसा करने से बाड़े की मिट्टी में उपस्थित सभी कीटाणु पूर्ण रुप से समाप्त हो जायेगें।

छोटे पैमाने पर बकरी पालन परियोजना का आर्थिक विशलेषणः

आज बढ़ती हुई मंहगाई में जब गाय व भैंसों की कीमत व उनके पालने का खर्च बहुत अधिक है, बकरी पालन ही ग्रामीण बेरोजगारों का एक प्रमुख पशुपालन व्यवसाय हो सकता हैं। यदि भूमिहीन या लघु कृषक छोटे स्तर पर 10 बकरी की इकाई आरम्भ करें तो यह लगभग 50 हजार रूपये की लघु पूंजी से शुरू की जा सकती हैं। परिवार के वह व्यक्ति जो दूसरे उत्पादक कार्यो में योगदान न करते हों, आदि के श्रम से यह आय प्राप्त की जा सकती है व साथ ही साथ परिवार की पोषण सुविधा में भी बकरी से प्राप्त दूध का महत्वपूर्ण योगदान होगा।

चित्र 10. बकरी चारा खाते हुए

(अ) व्यय

- 10 बकरियाँ, ₹ 6000 प्रति बकरी (ब्याने वाली) : 60,000
- गर्भ के अन्तिम माह एवं ब्याने के दो माह
- बाद तक दाने पर खर्च : ₹ 3300
- 8 माह की उम्र तक 8 मेमनों का दाने पर खर्च : ₹ 7200
- दवाओं आदि पर व्यय : ₹ 500

कुल व्यय : ₹ 71,000

(ब) आय

- वर्ष के अंत में 10 बकरियों का मूल्य : ₹ 60,000
- 8 माह के उम्र में 8 मेमनों का मूल्य 25 किग्रा. भार पर बेंचने पर आय (8x25x175) : ₹ 35,000
- 10 बकरी से एक ब्याँत में औसतन 1200, लीटर दूध पैदा होता है। मेमनें को बढ़वार के लिए दूध पिलाकर, शेष दूध बाजार में ₹ 30/किग्रा. की दर से बेचा जाए।
- दूध से आय (₹) (10X100X30) : 30,000

- खाद की कीमत : ₹ 1000
- इस प्रकार कुल आय : ₹ 1,26,000
- वर्ष के अंत में शद्ध लाभ : ₹ 126000 – 71000
- : ₹ 55,000

इस प्रकार एक निर्बल परिवार यदि ₹ 50,000 बैंक से ऋण लेकर 10 गर्भित शीध्र ब्याने वाली बकरियाँ खरीद कर पालता है तो वर्ष के अंत में ₹ 55,000 का शुद्ध लाभ मिल सकता है। इस प्रकार दैनिक कार्यो में बिना रूकावट के इस वयवसाय से अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकता है तथा बेरोजगारी भी कम हो जाती है। यदि ऐसी नस्ल का चुनाव किया जाये जिसमें मादा एक से अधिक बच्चे को जन्म दें, जिनका दूध एवं माँस उत्पादन अधिक हो व बच्चों में मृत्यु दर कम हो तो अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

बकरी पालन पर लागत कम आये इसके लिए जरूरी है चारे पर आने वाली लागत को कम किया जाये। इसके लिए ऐसे चारे–दाने प्रयोग किये जाये जो किसान के पास या गाँव में आसानी से उपलब्ध हों व उनकी खरीददारी ऐसे समय की जाये जब वे तुलनात्मक रूप से सस्ती दर पर मिल सकतें हो। पशुओं को चरागाह, अनुपजाऊ एवं बंजर भूमियों पर 6–7 घन्टे की चराई करा कर पालना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक रहता है। इसके साथ ही यदि बकरी पालक अपने परिवार के सदस्य को चरवाहा रखता है तो वह चरवाहे आदि का खर्च भी बचा सकता हैं।

स्पीति गधे – गुण व उपयोगिता

राहुल बहल, ज्योत्सना बहल, पी एन अत्री और संजीव नढढा
भाकृअनप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल – 132001

गधा एक शर्मीला व मेहनती जानवर है। इसकी कठिन मार्गों पर आसानी से व बिना फिसले चलने की विशेषता के कारण इसे, विशेषकर दुर्गम और पहाड़ी क्षेत्रों में, बोझा ढोने के काम में लाया जाता है (वार्षनेय और गुप्ता, 1994। पालने में कम खर्च के कारण यह आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए भी काफी उपयोगी है। गधे के इन गुणों के बावजूद इसे योजनाकारों व् अनुसंधानकर्ताओं द्वारा अक्सर नजरअंदाज किया जाता है। भारत में पाई जाने वाली गधे की नस्लों, उनके शारीरिक गुणों, पालने की विधि व उपयोगिता पर बहुत कम जानकारी उपलब्ध है (सिंह व अन्य, 2007, बहल व अन्य, 2013)। हमारे देश में गधे की कुछ प्रजातियों जैसे स्पीति अथवा लद्दाखी गधों के बारे में कुछ उल्लेख उपलब्ध हैं। स्पीति गधे हिमाचल प्रदेश के स्पीति व यांगथांग क्षेत्रों में पाए जाते हैं। यह क्षेत्र समुद्र तल से 3000–4200 मीटर के बीच स्थित है। इस क्षेत्र की जलवायु अत्यधिक ठंडी व शुष्क है। बहुत अधिक हिमपात व अत्यधिक ठण्ड के कारण यहाँ शरद ऋतु, बहुत ही कठिन होती हैं। पशु जनगणना के अनुसार लाहौल स्पीति और किन्नौर जिलों में गधों की कुल संख्या क्रमशः 2007 और 2361 है।

पालने की विधि

इस क्षेत्र में हर परिवार द्वारा 1–3 गधे पाले जाते हैं। इनको गर्मियों में खुले स्थान में रखा जाता है। जो पत्थरों की दीवार या बाड़ से घिरा होता है। सर्दियों में व रात के समय इन्हें पशु गृह में रखा जाता है जो अक्सर घर का हिस्सा होता है और घर की पहली मंजिल पर स्थित होता है। इनको चरा कर व घर पर ही चारा उपलब्ध करा कर, दोनों ही तरह से पाला जाता है। गर्मियों में इन्हें नजदीकी चरागाहों व अन्य अनुपयोगी भूमि में चरने के लिए छोड़ दिया जाता है। सर्दियों में, जब यह क्षेत्र पूरी तरह से बर्फ से ढका रहता है, इनको सूखा चारा, जिसे गर्मियों में संरक्षित किया जाता है, उपलब्ध कराया जाता है। यह गधे इस क्षेत्र में पड़ने वाली ठण्ड व चारे की कमी को सहन करने में सक्षम हैं। इनको काम के अनुसार, कुछ मात्रा में दाना व पशु आहार भी दिया जाता है, जैसे काला मटर, जौ, मटर का छिलका, गेहूं व बाजार में उपलब्ध पशु आहार इत्यादि।

शारीरिक गुण

स्पीति गधे छोटे आकार के व मजबूत और गठे हुए शरीर के होते हैं। इनकी पीठ सीधी व् टाँगे मजबूत होती हैं। इनका शरीर लंबे बालों की मोटी तह से ढका रहता है (चित्र 1 व 2)। यह मुख्यतः गहरे भूरे/काले (14%) पूर्णतः भूरे (58%), हलके रंग की तली वाले भूरे (16%) और लगभग सफेद तली वाले हल्के भूरे रंग के होते हैं। कंधों का '+' का निशान केवल हल्के रंग के जानवरों में दिखता है। इन गधों का सिर छोटा व चौड़ा होता है। मुंह की लम्बाई वयस्क नर व मादा पशुओं में क्रमशः 32.1±1.47 व 31.5±1.03 सें.मी. होती है। नाक की हड्डी सीधी या हल्की सी उत्तल होती है। इनके कान अपेक्षाकृत छोटे, सीधे व् ऊपर की और उठे होते हैं जो आड़ी व सीधी, दोनों धुरियों पर घूम सकते हैं। वयस्क नर व मादा पशुओं में कान की लम्बाई क्रमशः 21.39±1.13 और 21.±0.81 सें.मी. होती है। सिर मजबूत गर्दन पर टिका होता है जिसकी औसतन लम्बाई 31.1±2.21 (नर) और 30.15± 1.52 से.मी. (मादा) होती है। स्पीति गधों का विस्तृत शारीरिक विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है।

इनकी कंधो तक ऊंचाई नर व मादा पशुओं में क्रमशः 88.59 ±3.27 और 88.65±3.30 से.मी. होती है। शरीर की लम्बाई नर व मादा जानवरों में 91.1±2.88 और 90.96 ±2.52 से.मी. होती है। छाती की परिधि 100.5 ±5.02 (नर) और 98.58±4.23 (मादा) से.मी. होती है। पूंछ की लम्बाई नर व मादा पशुओं में क्रमशः 54.21 ±7.63 और 55.56±9.26 से.मी. होती है। पूंछ के छोर पर स्थित बालों के गुच्छे की लम्बाई अपेक्षाकृत अधिक होती है, परन्तु पूरी पूंछ पर लंबे बाल होने के कारण यह स्पष्ट रूप से नहीं दिखता है।

वयस्क नर व मादा पशुओं का अनुमानित भार क्रमशः 75.12±9.57 व 75.69±9.85 कि.ग्रा. होता है। अधिकतर शारीरिक मापों में नर व मादा पशुओं में सांख्यिकी दृष्टि से अभिव्यंजक अंतर नहीं होता है। केवल अगली टांग के मध्य भाग (कैनन) की परिधि और खुरों की परिधि में नर व मादा पशुओं में अभिव्यंजक ($P<0.05$) अंतर होता है। जब इन गधों की राजस्थान के सिन्धी गधों से तुलना की गई तो स्पीति गधों को अभिव्यंजक ($P<0.01$) तौर पर छोटा व हल्का पाया गया जो इनकी कम ऊंचाई, छाती की परिधि, मुंह की लम्बाई और अनुमानित भार में निहित था।

प्रजनन गुण

इन गधों का मुख्य प्रजनन समय मार्च से सितम्बर तक रहता है परन्तु यह वर्ष भर प्रजनन करते देखे गए हैं। नर पशुओं की प्रजनन के लिए वयस्क होने की उम्र 1.5 से 2 साल तक है और पहला मिलान 2 से 2.5 वर्ष के बीच होता है। चार से छः मादाओं से प्रजनन के लिए एक नर रखा जाता है। प्रजनन के लिए नर का चुनाव गाँव के लोगों द्वारा पशु के स्वास्थ्य, काम करने की क्षमता, फुर्ती, खड़े कान, चमकीली आँखों आदि के आधार पर किया जाता है।

मादा पशुओं की प्रजनन के लिए वयस्क होने की उम्र 1.5 से 2 साल तक है। ईस्ट्रस 4 से 10 दिन तक का होता है। पहला गर्भधारण 2 से 3 साल के बीच में होता है। गर्भधारण के लिए दो से तीन मिलान की आवश्यकता होती है। पहला ब्यांत तीन से चार साल के बीच होता है। गर्भ का अन्तराल 12 से 12.5 महीने तक का होता है।

उपयोग

स्पीति गधों का मुख्य उपयोग बोझा ढ़ोने के लिए होता है। जैसे चरागाह से गोबर व खाद गाँव तक लाना, जंगल से जलाने की लकड़ी व चारा लाना, भवन निर्माण की सामग्री ढ़ोना, सैलानियों का सामान ढ़ोना इत्यादि। यह गधे इस कठिन और कम ऑक्सीजन वाले क्षेत्र में 100 कि.ग्रा. तक भार ढ़ोने में सक्षम हैं। इन जानवरों की बिक्री से भी पशुपालकों को कुछ आमदनी होती है। परन्तु वर्तमान में हो रहे अभियांत्रिकीकरण के कारण इनकी जनसँख्या में निरंतर कमी आ रही है। इसलिए गधों की इस दुर्लभ प्रजाति को बचाने के लिए इसके संरक्षण व सुधार के लिए गंभीरता से आवश्यक कदम उठाने की जरुरत है।

सन्दर्भ

बहल आर., सदाना डी.के., बहल जे., कुमार एस., केदार वी. और जोशी बी.के. 2013. डोंकी जेनेटिक रिसोर्सेज ऑफ इंडिया; सिंधी डोंकिस, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल प्रकाशन (80/2013).

वार्षनेय जे.पी. और गुप्ता ए.के. 1994. दी डोंकी एंड इट्स पोटेंशियल ए रिव्यू. इंटरनेशनल जरनल ऑफ एनिमल साइंसेज, 9: 157–167.

सिंह एम. के., गुप्ता ए.के. और यादव एम.पी. 2007. परफोर्मेंस इवेल्युएशन ऑफ डोंकिस इन एरिड जोन ऑफ इंडिया. इंडियन जरनल ऑफ एनिमल साइंसेज, 77:1017–1020.

तालिका 1 : स्पीति प्रजाति के वयस्क गधों के शारीरिक माप का विवरण

शरीर का माप	नर		मादा	
	औसत±स.डे. (सें.मी.)	अन्तराल (सें.मी.)	औसत±स.डे. (सें.मी.)	अन्तराल (सें.मी.)
शरीर की लम्बाई	91.1±2.88	86–97	90.96±2.52	85–45
कन्धो पर ऊंचाई	88.59±3.27	84–95	88.65±3.30	80–94
छाती की परिधि	100.5±5.02	90–115	98.58±4.23	90–107
गर्दन की लम्बाई	31.1±2.21	27–36	30.15±1.52	28–33
मुंह की लम्बाई	32.1±1.47	29–35	31.5±1.03	30–34
कान की लम्बाई	21.39±1.13	19–23	21.5±0.81	20–23
पूंछ की लम्बाई	54.21±7.63	39–68	55.6±9.26	37–70
कैनन की लम्बाई (अ.टा.)	19.93±0.84	18–21	19.96±0.77	19–22
कैनन की लम्बाई (पि.टा.)	26.1±1.35	23–28	26.4±1.0	24–28
कैनन की परिधि (अ.टा.)*	12.04±0.71	11–13	11.57±0.	10–13
कैनन की परिधि (पि.टा.)	12.79±0.85	11–14	12.7±0.92	11–14
पैस्ट्रन की लम्बाई (अ.टा.)	8.66±0.72	7–10	8.62±0.57	8–10
पैस्ट्रन की लम्बाई (पि.टा.)	8.68±0.56	8–10	8.6±0.65	8–10
पैस्ट्रन की परिधि (अ.टा.)	11.51±0.85	10–13	11.27±0.78	10–13
पैस्ट्रन की परिधि (पि.टा.)	12.36±1.21	10–15	11.94±1.61	10–15
खुर की लम्बाई (अ.टा.)	5.83±0.54	5–7	5.73±0.45	5–6
खुर की लम्बाई (पि.टा.)	5.53±0.51	5–6	5.45±0.5	5–6
खुर की परिधि (अ.टा.)*	20.9±1.01	19–23	20.25±1.03	18–22
खुर की परिधि (पि.टा.)*	20.67±2.02	18–26	19.18±1.13	17–21
अनुमानित भार (कि.ग्रा.)	75.12±9.57	58.35–99.84	75.7±9.85	54.35–103.1

*अ.टा.– अगली टांग, पि.टा.–पिछली टांग, स.डे.– स्टैंडर्ड डेविएशन, * नर व् मादा में अभिव्यंजक अंतर ($P<0.05$)*

चित्र 1. स्पीति प्रजाति का नर गधा

चित्र 2. स्पीति प्रजाति की मादा गधी

नाग हंस – छत्तीसगढ़ की स्थानीय बत्तख प्रजाति

के मुखर्जी, मोहन सिंह, केषर परवीन एवं दिप्ती किरण बरवा
पशु अनुवांशिकी एवं प्रजनन विभाग
पशुचिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, अंजोरा, दुर्ग
छत्तीसगढ़ कामधेनु विश्वविद्यालय दुर्ग

छत्तीसगढ़ राज्य एक वन बहुल्य प्रदेश है। छत्तीसगढ़ राज्य का लगभग 2/3 भाग वनीय क्षेत्र है। इन वनों में पशुओं एवं पक्षियों की विभिन्न प्रजातियाँ पाई जाती है। छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर क्षेत्र में नागहंस बत्तख बहुत लोकप्रिय है। यह बत्तख *"मस्कोवी बत्तख"* की एक प्रजाति है। नाग हंस बत्तख छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर क्षेत्र, तथा छत्तीसगढ़ राज्य से लगे हुए आंध्र प्रदेश, झारखंड और ओडिषा राज्यों के सीमावर्ती इलाकों में भी बहुत लोकप्रिय है। इन राज्यों की अधिकांश जनसंख्या आदिवासी जाति की है। नाग हंस बत्तख बहुत आसानी से घरों में पाली जा सकती है तथा यह आदिवासी जनजातियों को कम मूल्य में माँस एवं अण्डे उपलब्ध कराती है।

शारीरिक लक्षण

नाग हंस बत्तखों के सिर के पंखों का रंग प्रायः काला होता है। काले पंखों के अलावा भूरे या सफेद पंख वाले नाग हंस बत्तख भी पाये जाते हैं। नाग हंस बत्तखों का बाकी शरीर प्रायः काला होता है। नाग हंस बत्तखों के गर्दन पर सफेद अथवा भूरे रंग के पंख पाए जाते हैं। नाग हंस बत्तखों के चोंच का रंग प्राय गुलाबी या काला होता है।

नर बत्तखों के चोंच का रंग मादा बत्तखों से ज्यादा गहरा होता है। चोंच का रंग अंडे देने के समय या प्रजनन के समय अधिक चमकीला एवं गहरा हो जाता है। चोंच का आकार अंग्रेजी के 'U' अक्षर जैसा होता है। एक वयस्क नाग हंस बत्तख की चोंच की लम्बाई 5 से.मी. तक हो सकती है। चोंच का अच्छे से विकसित होना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि नाग हंस बत्तख अपना अधिकतम भोजन चोंच में इकठ्ठा कर लेती है तथा अपनी चोंच को पानी में डुबाने के बाद ही भोजन को निगलती है। नाग हंस बत्तखों के आंखों का रंग प्रायः भूरा होता है। नाग हंस बत्तखों में घुण्डी (knob) लिंग प्ररिक्षण का एक माप है। घुण्डी प्रायः नर नाग हंस बत्तखों में पाए जाते हैं। नर नाग हंस बत्तखों में घुण्डी का रंग प्रायः गुलाबी या गहरा लाल होता है।

चित्र 1. वयस्क नाग हंस बत्तख

चित्र 2. सिर एवं चोंच की बनावट

चित्र 3. बत्तखों के पैर के प्रकार

एक वयस्क नाग हंस बत्तख के शरीर के विभिन्न भागों का माप तालिका 1 में अंकित है।

तालिका 1: शरीर के विभिन्न भागों का विवरण

1.	गर्दन की लम्बाई	3.78 इंच
2.	वक्षस्थल की चौड़ाई	5.18 इंच
3.	कंधे की लम्बाई	5.15 इंच
4.	कील की हड्डी	5.47 इंच
5.	वयस्क बत्तख के शरीर का वजन	2 – 3 कि.ग्रा

बत्तखों का पैर प्रायः झिल्लीदार (webbed) होता है। नाग हंस बत्तखों के झिल्लीदार पैरों पर काले, पीले, हल्के सफेद व भूरे रंगों के निशान या धब्बे पाए जाते हैं।

नाग हंस बत्तख के अंडों का भौतिक मूल्यांकन

एक वयस्क नाग हंस बत्तख एक अंडा देने के चक्र में (laying cycle) 35–55 अंडे देती है। एक चक्र में 10–12 अंडे के बाद नाग हंस बत्तख 2 से 3 दिनों का विच्छेद लेती है। एक वयस्क मादा नाग हंस बत्तख प्रायः साल भर अंडे देती है। नाग हंस बत्तख प्रायः सुबह या रात्रि काल में अंडे देती है। नाग हंस बत्तखों के अंडे के विभिन्न मापदण्ड इस प्रकार हैं:

तालिका 2: नाग हंस बत्तखों के अंडों के मापदण्ड

1.	अंडे का वजन	63 ग्राम
2.	अंडे का रंग	हल्का सफेद, मटमैला (dusty white)
3.	अंडों की चौड़ाई	3.98 ± 0.05 से.मी
4.	अंडों की लम्बाई	5.98 ± 0.04 से.मी
5.	अंडा आकार सूचक (egg shape index)	66.32 ± 0.73 से.मी.

चित्र 4. नाग हंस बत्तख के मटमैले रंग के अंडे

चित्र 5. नाग हंस बत्तख के हल्के सफेद रंग के अंडे

मिथुन : उत्तरपूर्वीय पर्वतीय क्षेत्रों का गौरव एवं सांस्कृतिक प्रतीक

अनुपमा मुखर्जी, सब्यसाची मुखर्जी, इमूमांग लौगंकुमार एवं मुनमुन मेच
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान करनाल–132001

भारत की लगातार बढ़ रही जनसंख्या की आहार पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में पोषक आहारों की आवश्यकता है। इस पोषण आवश्यकता को पशु प्रोटीन से काफी हद तक पूर्ण किया जा सकता है। अच्छे स्वास्थ्य तथा शारीरिक वृद्धि के लिए पशु प्रोटीन महत्वपूर्ण है। किन्तु भारत में मांस एवं दुग्ध पदार्थों की मांग तथा पूर्ति के बीच काफी अंतर है। हमारे देश में मांस एवं दुग्ध के लिए पारम्परिक रूप में पाले जाने वाले मवेशियों जैसे गाय, भैंस, बकरी तथा भेड़ का काफी योगदान रहा है। अतः वर्तमान मांग से निपटने के लिए गैर परम्परागत स्रोतों से मांस व दुग्ध उत्पादन की पूर्ति पर जोर देना अत्यंत आवश्यक है ताकि वांछित लक्ष्य की प्राप्ति की जा सके। उत्तर–पूर्वी पर्वतीय इलाके के जनजातीय लोगों द्वारा अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के रूप में पाला जाने वाला मिथुन यदि पारम्परिक पशुपालन प्रणाली के साथ–साथ वैज्ञानिक पद्धति से पाला जाए तो यह देश के सम्पूर्ण मांस तथा दुग्ध उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इस क्षेत्र के जनजातीय समुदायों में मिथुन का मांस एक पंसदीदा पोषण आहार है। अभी तक इस क्षेत्र के किसान मिथुन को आहार के लिए जंगलो में स्वच्छंद छोड़ देते हैं, एवं इसके वैज्ञानिक विधि द्वारा पालन नहीं करते है। अतः इस परिदृश्य में मांस, दुग्ध एवं अन्य उत्पादों के लिए वैज्ञानिक तरीके से मिथुन पालन पद्धति को अपनाना बहुत जरूरी है।

प्राकृतिक वास, वितरण एवं प्रजातियाँ

मिथुन (बॉस फ्रौंटेलिस) जिसे पर्वतो के पशु के नाम से भी जाना जाता है, जंगली गाउर का पालतू रूप है। अपने आप में अनूठे इस पशु प्रजाति का भौगोलिक वितरण सीमित है। यह मुख्य रूप से भारत के उत्तर पूर्वीय पर्वतीय राज्यों जैसे अरूणांचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर तथा मिजोरम के उष्ण वर्षा वाले जंगलो में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त काफी कम संख्या में यह पशु म्यांमार, चीन, बांग्लादेश तथा भूटान में भी पाया जाता है। वर्तमान में भारत में मिथुन की संख्या लगभग 2,78,000 है।

भारत में मिथुन की चार नस्लें–अरूणांचल, नागालैंड, मणिपुर तथा मिजोरम नस्लों के नाम से पारिभाषित की गयी हैं। इन चारों नस्लों को इनके पाये जाने वाले राज्यों के नाम दिए गए है। भारत में कुल मिथुन जनसंख्या में अरूणाचल, नागालैंड, मणिपुर तथा मिजोरम नस्लों का योगदान क्रमशः 69, 14, 7 तथा 1 प्रतिशत है। इन चार विभिन्न नस्लों में अरूणाचल नस्ल आकार में सबसे बड़ी तथा मिजोरम नस्ल सबसे छोटी है।

सामाजिक एवं आर्थिक महत्व

उत्तर–पूर्वीय पर्वतीय राज्यों में मिथुन को प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता हैं। स्थानीय जनजातीय लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन में इस पशु की एक विशिष्ट भूमिका है। समाज में किसी व्यक्ति के पास मिथुन होना उसकी सम्पन्नता एवं उत्कृष्टता का प्रतीक माना जाता है। किसान सामान्यतः मांस के लिए मिथुन को पालते हैं। इसके साथ ही मिथुन को विवाह में उपहार स्वरूप भी भेंट किया जाता है। कई प्रकारों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक संस्कारो में इस पशु की बलि देने का भी प्रचलन है। यद्यपि वर्तमान में किसान इसके दूध का उपयोग नहीं करते हैं, किंतु इसका दूध अत्यधिक पोषण युक्त है। मांस के रूप में प्रयुक्त किए जाने के कारण इसकी अल्प वृद्धि दर किसानों के लिए चिन्ता का एक मुख्य कारण है। यदि पूर्ण आहार दिया जाए तो इसकी वृद्धि दर 300 से 600 ग्राम प्रति दिन के बीच पायी गयी है, जो कि अन्य पशुओं के बराबर है। हाँलाकि, प्लाज्मा वृद्धि हार्मोन सांद्रता मिथुन में किसी भी पालतू

पशु सें कहीं अधिक है। जनजातीय समाज में मिथुन का माँस रोजमर्रा में नहीं प्राप्त होता है। इसका माँस केवल महत्वपूर्ण सामाजिक आयोजनों एवं विशेष पर्वों पर ही बिकता है। इसके माँस की उपभोक्ताओं में मांग बहुत है एवं इसका मांस, अत्यधिक प्रचलित सुअर मांस एवं अन्य पशुमांस की अपेक्षा अत्यधिक नरम एवं स्वादिष्ट माना जाता है। विभिन्न आयु वर्गो में मिथुन में ड्रैसिंग प्रतिशत पाने के लिए मिथुन को 4–5 वर्ष आयु में वध किया जाने का सुझाव दिया जाता है। मिथुन से 1–1.5 लीटर दूध प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है। इसके दूध का विश्लेषण करने पर अन्य पशुओं के दूध की तुलना में अधिक वसा (8–13%), ठोस–लवण (18–24%) तथा प्रोटीन (5–7%) तत्व मिलते हैं। अतः इन पर्वतीय क्षेत्रों में घरेलू खपत के लिए अच्छे दूध प्राप्ति के लिए मिथुन से काफी संभावनाएं है। चूँकि मिथुन के दूध में वसा तथा प्रोटीन की मात्रा अत्यधिक पायी जाती है, अतः इसके दूध का उपयोग विभिन्न मूल्य संवर्धित पदार्थों जैसे पनीर, घी, क्रीम, मक्खन, दही, विभिन्न प्रकार के मिष्ठान आदि बनाने का सफलतापूर्वक प्रयोग भाकृअनुप–राष्ट्रीय मिथुन अनुसंधान क्रेन्द्र, नागालैंड में किया जा चुका है। मिथुन की खाल की गुणवत्ता पारम्परिक गाय की खाल की तुलना में उत्कृष्ट पायी गयी है। इसकी खाल द्वारा राष्ट्रीय मिथुन अनुसंधान क्रेन्द्र में कई उपयोगी चीजो को प्रायोगिक तौर पर सफलतापूर्वक निर्माण किया गया, जिनमें जूते, पर्स, बैग, चाभी का गुच्छा एवं अन्य कई चीजें शामिल हैं।

वर्तमान पालन प्रणाली

वर्तमान में मिथुन समुद्री तल से 300 से 3000 मी. की ऊचाई तक वाले स्थानों में पाला जाता है। इसे विशेष रूप से मुक्त चरण स्थिति में पाला जाता है। अपने आहार के लिए मिथुन मुख्यतः जंगली चारे, वृक्षों, झाड़ियों और प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली वनस्पतियों की पत्तियों को खाते हैं। किसान इन्हें किसी भी प्रकार का अतिरिक्त आहार नहीं देते हैं, हाँलाकि कभी–कभार वे उन्हें नमक देते हैं, विशेषकर ऐसे समय जब उन्हें कुछ उद्देश्यों के किए अलग–अलग करना हो या नियंत्रित रखना हो। पशुपालक मिथुनों को सामुदायिक झुंड के रूप में पर्वतीय जंगलो में रखते हैं और ग्राम परिषद पशु चरवाहो को उनके पशुओं की देखभाल का कार्य सौंपती है। व्यावहारिक रूप से ये चरवाहे पशुओं की देख भाल का सारा उत्तरदायित्व संभालते हैं, किसी व्यक्ति विशेष के पशुओं की पहचान करते हैं, तथा आस–पास की खेती को नुकसान पहुंचाने से पशुओं को रोकते हैं। किसान अपनी आवश्यकता के समय जंगल से इन पशुओं को वापस लाने के लिए चरवाहों की सहायता लेते हैं। मुक्त चरण के अंतर्गत किसान कभी–कभी अपने पशुओं को एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर ले जाकर क्रमगत रूप से भी उन्हें चराने का काम करते हैं।

वर्तमान परिवेश में, वन्य क्षेत्रों का तीव्र गति से घटना एवं चारागाह क्षेत्रो में निरंतर कमी से पशुपालन पर काफी प्रभाव पड़ा है। ऐसी स्थिति में मिथुन की जनसंख्या में बढ़ोतरी पर विशेष ध्यान देना एवं उसके उत्पादन को बढ़ाना उत्तर–पूर्वीय पर्वतीय क्षेत्रों में सम्पन्नता ला सकता है। भविष्य में मिथुन मालिकों एवं पालकों को आर्थिक संबल प्रदान करने के लिए मिथुन पालन के कई आयामों पर अनुसंधान करके मिथुन की उपयोगिता एवं उत्पादन को बनाये रखना अत्यंत आवश्यक है। पशु संसाधनों का उचित उपयोग (संरक्षण एवं रक्षण) ना करने से यद्यपि लघुकालीन आवश्यकता की पूर्ति तो हो जाती है, परन्तु दीर्घकालीन परिणाम भयावह एवं विनाशकारी होते हैं, और इससे प्रजाति के विलुप्त होने की सम्भावना भी बनी रहती है।

भेड़ों की प्रमुख नस्लें एवं उनके लक्षण

अविनाश सिंह[1], आलोक कुमार यादव[1] एवं सुनील कुमार[2]
[1]शोध छात्र, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[2] शोध छात्र, भाकृअनुप–भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उ.प्र.)

देश में भेड़ की 40 वर्णित नस्लें हैं। बड़ी संख्या में देश में भेड़ होने के पश्चात भी लगभग 50 प्रतिशत पशु अवर्णित प्रजाति के हैं। भेड़ की अधिकांश नस्लें प्राकृतिक रूप से कृषि जलवायु प्रक्षेत्र अनुसार विकसित हुई हैं और सामान्यतः इन नस्लों का नामकरण इनकी उत्पत्ति स्थान एवं विशिष्ट लक्षणों के आधार पर किया गया है।

भेड़ की नस्लों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. भारत के विभिन्न कृषि मौसमी क्षेत्रों के अनुसार।
2. उनके उत्पादन व गुणधर्म के अनुसार।

गद्दी

गद्दी भेड़ जम्मू एवं कश्मीर प्रान्त के जम्मू क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के रामनगर, उधमपुर, कुल्लू एवं कांगड़ा घाटियों में एवं उत्तराखण्ड के नैनीताल टेहरी गढ़वाल एवं चमोली जिलों में पाई जाती है। पशु मध्यम आकार के प्रायः सफेद रंग के होते हैं हालांकि लाल भूरे, भूरे काले एवं उनके मिश्रण युक्त भी पाये जाते हैं। नर सींग वाले होते हैं तथा 10 से 15 प्रतिशत मादायें भी सींग वाली होती हैं। इनके द्वारा सापेक्ष रूप से प्राप्त ऊन महीन एवं चमकदार व रेशा 5 इंच तक लम्बाई में हो सकता है। इन भेड़ों से साल में तीन बार तक ऊन प्राप्त की जा सकती है। लगभग एक से डेढ़ किलो की महीन चमकदार ऊन का वार्षिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

भकरवाल

इसका नाम इस नस्ल को पालने वाले बंजारा जनजातियों से लिया गया है। ये पशु घुमनशील प्रकृति के होते हैं। मध्यम आकार के विशिष्ट रोमन नाक पायी जाती है। सभी के कान पर भूरे रंग के धब्बे होते हैं। नर सींग युक्त व मादा सींग रहित होती है। कान लम्बे लटकते हुये होते हैं। पूँछ छोटी तथा दुबली पतली होती है। यह जानवर बड़े स्थूल शरीर का होने के पश्चात भी पहाड़ों पर चढ़ने में कुशल होता है। इन भेड़ों से भी साल में तीन बार ऊन प्राप्त की जा सकती है।

गुरेज

यह नस्ल उत्तर पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र में पायी जाती है। गुरेज भेड़ जम्मू एवं कश्मीर की सबसे बड़ी नस्ल है। प्रायः यह सफेद रंग की होती है। हालांकि कुछ भूरी काली धब्बे वाली भी होती हैं। कुछ प्रतिशत पशुओं में छोटी एवं पतली नुकीली सींग होती है। कान लम्बे, पतले एवं नुकीले होते हैं। वार्षिक ऊन का उत्पादन 0.5 से 1 किग्रा तक होता है।

रामपुर बुशायर

रामपुर बुशायर नस्ल हिमाचल प्रदेश के शिमला, किन्नौर नाहन, विलासपुर, सोलन, लाहुल एवं स्पीती जिलों में तथा उत्तराखण्ड के देहरादून, ऋषिकेश, चकराता एंव नैनीताल जिलों में पाये जाते है। पशु मध्यम आकार वाला होता है। ऊन का रंग मुख्य रूप से सफेद, भूरा, काला होता है एवं विभिन्न अनुपातों में टैन रंग की पटिटयां पूरे शरीर पर पायी जाती हैं। कान लम्बे लटकते हुये होते हैं। चेहरे की आकृति उत्तल होती है जोकि एक विशेष प्रकार की रोमन नाक की आकृति बनाता है। नर में सींग होते हैं अधिकांश मादाऐं सींग रहित होती हैं। पैर, उदर एवं चेहरे पर ऊन नहीं पायी जाती है।

पूंछी

यह जम्मू प्रान्त के पुंछ एवं राजौरी जिले के कुछ भागों में पायी जाती हैं। पशु गद्दी नस्ल के समान होते हैं। लेकिन आकार में छोटे होते हैं। यह अधिकांशतः सफेद होते हैं जिसमें चेहरा भी सम्मिलित होता है तथा इन पर भूरे एवं हल्के धब्बे भी पाये जाते हैं। कान मध्यम आकार का होता है। पूंछ छोटी एवं पतली होती है। पैर भी छोटे होते हैं। जिससे आकार छोटा दिखायी पड़ता है।

करनाह

यह नस्ल उत्तरी कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्र के करनाह तहसील में पायी जाती है। पशु बड़े होते हैं नरों में बड़ी मुड़ी हुयी सींग पायी जाती है तथा उभरी हुई नाक पायी जाती है। ऊन का रंग सामान्यतः सफेद होता है।

चांगथांगी

यह नस्ल लद्दाख के चांगथांग क्षेत्र में पायी जाती है। पशु सुगठित शरीर वाले होते हैं जोकि बड़ी संरचना के अच्छे ऊन से ढके हुये होते हैं। ऊन अप्रत्याशित रूप से लम्बे आकार का होता है।

बनपाला

यह प्रजाति दक्षिण सिक्कम में पायी जाती है। पशु लम्बे, बड़ी टांगों वाले सुगठित शरीर के होते हैं। ऊन का रंग सफेद से लेकर अपेक्षाकृत काले एवं अनेक मध्य रंगों वाला होता है। कान छोटे एवं नलिकादार होते हैं। नर एवं मादा सींगयुक्त होते हैं। पूंछ छोटी एवं पतली होती है। उदर एवं टागों पर बाल नहीं होते हैं।

नीलगिरी

नीलगिरी नस्ल 19वीं शताबदी में विकसित हुयी। इसकी उत्पत्ति संकरण से हुई जिसमें स्थानीय बाल वाली कोयम्बटूर नस्ल, तसमानियाई मैरीनो, चेवीयट एवं दक्षिण डाउन के अनिश्चित स्तर की अनुवांशिकता का प्रयोग हुआ है। पशु मध्यम आकार के एवं सफेद होते हैं। तथा कदाचित शरीर एवं चेहरे पर भूरी पट्टी होती है। चेहरे की सतह उत्तल होती है, जोकि विशिष्ट रोमन नाक का आकार देती है। कान चौड़े सपाट एवं लटकते हुये होते हैं। नर में सींग का अंकुर एवं स्कर्स एवं मादा सींग रहित होती है। पूंछ मध्यम आकार की एवं पतली होती है।

कश्मीर मेरीनो

यह नस्ल विभिन्न मैरीनो प्रकारों से जोकि मुख्य रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करने वाली नस्लों जैसे गद्दी, भकरवाल एवं पूंछी के संकरण से उत्पन्न हुयी है। इसमें मेरीनो की अनुवांशिकता कुछ से लेकर लगभग 100 प्रतिशत तक होती है, जबकि 50–75 प्रतिशत तक अनुवांशिकता अधिकतम भेड़ो में पायी जाती है। क्योंकि इसमें बहुत सारी देशी नस्लों का अंश होता है। इन कारणो से इस प्रजाति का कोई विशेष वर्णन नहीं किया जा सकता। इसका वार्षिक औसत ऊन उत्पादन लगभग 2.8 किग्रा होता है।

पूगल

बीकानेर जिले का पूगल क्षेत्र इसका गृह स्थान है तथा यह राजस्थान के बीकानेर एवं जैसलमेर जिलों में फैली हुयी है। पशु शरीर से हृष्ट–पुष्ट होता है। काले चेहरे पर छोटी हल्के भूरे रंग की पट्टियां होती हैं, जो आँखों के ऊपर किसी एक ओर होती हैं। निचला जबड़ा विशिष्ट रूप से भूरे रंग का होता है और काला रंग गर्दन तक फैला हो सकता है। कान छोटे व नलिकादार होते हैं। नर एवं मादा दोनो में सींग नहीं पाये जाते हैं। ऊन का रंग सफेद होता है।

पाटनवाड़ी

इस नस्ल को देशी कूंची बधियारी एवं चरोतरी भी कहते हैं। इसमें तीन प्रकार के उपभेद पाये जाते हैंः

1. अभ्रमणशील, लाल रंग के चेहरे के साथ छोटे शरीर तथा अपेक्षाकृत महीन ऊन उत्पन्न करने वाली जोकि उत्तर–पूर्वी सौराष्ट्र में पायी जाती है।
2. भ्रमणशील लम्बे पैर एवं बड़े शरीर वाली विशिष्ट रोमन नाक वाली। यह मोटा ऊन उत्पादन करती है। यह पश्चिमी एवं उत्तर–पूर्वी गुजरात में पायी जाती है।

3. यह मांस के लिए पाली जाती है एंव मोटे ऊन वाली होती है जो दक्षिण पूर्वी क्षेत्रों पलिताना के आसपास पायी जाती है।

तिब्बतन

यह नस्ल अरूणांचल प्रदेश के कमेंग जिला एवं उत्तरी सिक्कम में पायी जाती है। पशु मध्यम आकार के होते हैं। अधिकांश पशु सफेद के साथ काले या भूरे चेहरे वाले एवं शरीर पर भूरे एवं सफेद धब्बे पाये जाते हैं। नर एवं मादा दोनो में सींग पाये जाते हैं। नाक उत्तल होती है। जोकि विशेष प्रकार की रोमन नाक दिखती है। कान छोटे, चौड़े और लटकते हुये होते हैं। उदर पैर एवं चेहरे ऊन रहित होते हैं।

चोकला

यह नस्ल राजस्थान के चुरू, झुंझनू, बीकानेर, जयपुर एवं नागौर जिले में पायी जाती हैं। छोटे से मध्यम आकार के पशु चेहरे पर सामान्यतः ऊन नहीं होती है। लाल भूरा रंग जोकि गर्दन के मध्य तक फैला होता है एवं चमड़ी गुलाबी होती है। कान छोटे से लेकर मध्यम लम्बाई वाले एवं नलीदार होते हैं। नर एवं मादा दोनो सींग रहित होते है। पूंछ पतली एवं मध्यम लम्बाई वाली होती है। बाल घने एवं अपेक्षाकृत पतले होते हैं जो कि उदर एवं पैरों के अधिकांश भाग को ढ़के होते हैं।

नाली

राजस्थान के गंगानगर एवं झुंझनु जिले, हरियाणा के दक्षिण हिसार एवं रोहतक जिले इस नस्ल के गृह स्थान हैं इस नस्ल के पशु मध्यम आकार के होते हैं। चेहरा हल्का भूरा, चमड़ी गुलाबी होती है। नर एवं मादा दोनो सींग रहित होते हैं। पूंछ छोटी सी मध्यम और पतली होती है। कान लम्बा एवं पत्ती की भांति होता है। सिर उदर एवं टांगे ऊन से ढ़की रहती हैं।

मारवाड़ी

राजस्थान के जोधपुर, जालौर, नागौर, पाली एवं उदयपुर जिले गुजरात का जेबरिया क्षेत्र इस नस्ल का गृह स्थान है। पशु मध्यम आकार के एवं चेहरा काला होता है तथा यह ग्रीवा के निचले भाग तक फैला होता है। कान अत्यधिक छोटे एवं नालीदार होते हैं। नर एवं मादा दोनो सींग रहित होते हैं। ऊन सफेद लेकिन बहुत घना नहीं होता है।

मगरा

गृहस्थान–राजस्थान के बीकानेर, नागौर, जैसलमेर और चूरू जिले। पशु मध्यम से बड़े आकर के होते हैं चेहरा सफेद एवं आँख के चारों ओर हल्की भूरी पट्टी होती है जोकि इस नस्ल की विशेष पहचान है। चमड़ी गुलाबी होती है। कान मध्यम से बड़ी आकृति के तथा नलिकादार होते हैं। नर एवं मादा दोनों सींग रहित होते हैं। ऊन मध्यम गुणवत्ता की कालीन ऊन होती है जो अत्यधिक सफेद एवं चमकीली होती है।

जैसलमेरी

जैसलमेर इस नस्ल का गृह स्थान है। इस नस्ल की पूंछ एवं शरीर अच्छी तरह से विकसित होते हैं। काला या गहरा भूरा चेहरा, रंग ग्रीवा तक फैला हुआ व विशिष्ट रोमन नाक होती है। लम्बे लटकते हुये कान होते हैं। नर एवं मादा दोनो सींग रहित होते हैं। ऊन कालीन गुणवत्ता वाली होती है।

मालपुरा

यह नस्ल राजस्थान के जयपुर, टोंक, सवाईमाधोपुर, अजमेर, भीलवाड़ा एवं बूंदी जिले मे पायी जाती है। अच्छी तरह से गठित शरीर वाले पशु चेहरा हल्का भूरा, लम्बी टांगे, कान छोटे एवं नलिकादार आकृति वाले होते हैं। नर एवं मादा सींग रहित होते हैं। पूंछ मध्यम से लम्बी आकार की व पतली होती है। ऊन अत्यधिक मोटी होती है।

सोनाडी

गृह स्थान– राजस्थान के उदयपुर, डूँगरपुर ओर चित्तौड़गढ़ जिले। अच्छी तरह से गठित शरीर किन्तु मालपुरा से कुछ छोटे एवं लम्बी टांगों युक्त होती है। हल्का भूरा रंग चेहरा एवं गर्दन के मध्य तक फैला हुआ

होता है। कान में समान्यतः उपास्थिअंश पाया जाता है। पूंछ लम्बी एवं पतली होती है। नर एवं मादा सींग रहित होते हैं। अयन अच्छी तरह से विकसित होती है। ऊन सफेद, अत्यधिक मोटी होती है, उदर व टांगे ऊन रहित होती हैं।

मुजफ्फरनगरी

गृह स्थान–उ.प्र. के मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, सहारनपुर, मेरठ, बिजनौर, देहरादून जिले और दिल्ली और हरियाणा के भाग। पशु मध्यम से बड़े आकार के होते हैं। चेहरे की सतह हल्की उत्तल होती है। चेहरा एवं शरीर सफेद होता है तथा कहीं–कहीं पर भूरे एवं काले चकत्ते पाये जाते हैं। कान कभी–कभी काले होते हैं। नर में कभी–कभी अवशिष्ट छोटे सींग पाये जाते हैं। कान लम्बे एवं नलिकादार, पूंछ अपवाद स्वरूप बहुत लम्बी तथा फेटलाक तक पहुँचती है। ऊन सफेद मोटी एवं खुली हुई होती है।

जालौनी

गृह स्थान–उ.प्र. के जालौन, झांसी और ललितपुर जिले। पशु मध्यम आकार के होते है। नर एव मादा दोनो सींग रहित, कान बड़े, लम्बे, सपाट एवं नलिकादार होते हैं। पूंछ पतली एवं मध्यम आकार की होती है। ऊन मोटी, छोटी व खुली हुई होती है।

दक्कनी

गृह स्थान– महाराष्ट्र, ऑध्रप्रदेश और कर्नाटक। पशु मध्यम आकार का रंग सफेद तथा काला चिन्हों युक्त होता है कान मध्यम, सपाट एवं लटकते हुये होते हैं। पूंछ छोटी एवं पतली होती है। पशु में गल कम्बल पाया जाता है।

बेल्लारी

गृह स्थान– कर्नाटक का बिल्लारी जिला। पशु मध्यम आकार के होते है। शरीर का रंग सफेद एवं काला एवं इसमें कई प्रकार के संजोग वाला होता है। एक तिहाई नर सींग वाले व मादाऐं सामान्यतः सींग रहित होती हैं। कान मध्यम, सपाट एवं लटके होते हैं। पूंछ छोटी व पतली होती है। ऊन बहुत मोटी, बालों वाली एवं खुली होती है।

हासन

गृह स्थान– कर्नाटक का हासन जिला। पशु छोटा शरीर वाला सफेद तथा हल्के भूरे अथवा काले धब्बों वाला होता है। कान मध्यम तथा लम्बे एवं झुके हुये होते हैं। 39 प्रतिशत नर सींग वाले होते हैं। मादा सफेद होती है। ऊन बहुत मोटी एवं खुली होती है।

मांड्या

गृह स्थान– कर्नाटक का मांडया जिला। पशु अपेक्षाकृत छोटा, रंग सफेद होता है। किन्तु कुछ पशुओं मे चेहरा हल्का, भूरा जो कि गर्दन तक फैला होता है। शरीर गठा हुआ विशिष्ट रूप से पृष्ठ भाग ''यू'' आकृति वाला होता है। कान लम्बे पत्ती की तरह लटकते हुये, पूंछ छोटी एवं पतली होती है। नर एवं मादा दोनों सींग रहित तथा इनकी चमड़ी बहुत मोटी एवं बाल युक्त होती है।

मेचेरी

गृह स्थान– तमिलनाडु के सेलम एवं कोयम्ब्टूर जिले। पशु मध्यम आकार का होता है। रंग हल्का भूरा, कान मध्यम आकार के तथा नर एवं मादा दोनो सींग रहित होते हैं। पूंछ छोटी एवं पतली व शरीर बहुत छोटे बालों से ढका हुआ होता है जोकि दिखायी नहीं देते हैं।

किलाकरसल

गृह स्थान–तमिलनाडु के रामनाथपुरम एवं मदुरई, तंजावुर और रामनाथ जिले। चमड़ी का रंग गहरा भूरा लाल तथा सिर व टांगे एवं उदर में काले धब्बे पाये जाते हैं। कान मध्यम आकार के तथा पूंछ छोटी एवं पतली होती है। नर में मोटा एवं घुमावदार सींग पाया जाता है।

वेम्बूर

गृह स्थान–तमिलनाडु के वेम्बूर, मेलाखरनधाई, नगलपुरम, अचनगुलम गांव। चमड़ी का रंग गहरा भूरा

लाल होता है। कान मध्यम आकार के तथा पूंछ छोटी एवं पतली होती है।

कोयम्बटूर

गृह स्थान– तमिलनाडु के कोयम्बटूर एवं मदुरैइ जिले। पशु मध्यम आकार का सफेद रंग वाला होता है, किन्तु काले एवं भूरे धब्बे भी पाये जाते हैं। कान मध्यम आकार के तथा बाहर एवं पीछे की ओर मुड़े होते है। पूंछ छोटी एवं पतली होती है। 30 प्रतिशत नर सींग रहित होते हैं। ऊन सफेद मोटी व बालों युक्त होती है।

रामनाद

गृह स्थान–तमिनाडु का रामनाद जिला। पशु मध्यम आकार का, प्रमुख रूप से सफेद रंग किन्तु कुछ पशु काले एवं भूरे रंग के चिन्हों वाले होते हैं। कान मध्यम आकार के और बाहर एवं नीचे की ओर मुड़े हुये होते हैं। नर घुमावदार सींग वाले होते हैं। पूंछ छोटी एवं पतली होती है।

मद्रास रेड

गृह स्थान– तमिलनाडु के मद्रास, थीरूवलूर, कांचीपुरम, वेल्लोर एवं कुद्दालोर जिले। शरीर का रंग प्रधान रूप से भूरा एवं उसकी तीव्रता हल्के भूरे लाल से लेकर गहरे भूरे रंग की होती है। कुछ पशुओं के सिर, जांघ के भीतरी एवं निचले भाग एवं निचले उदर पर सफेद चिन्ह होते हैं। नर में मजबूत, झुर्रीदार एवं घुमावदार सींग पाये जाते हैं। मादा सींग रहित होती है। शरीर छोटे बालों से ढ़का होता है जो दिखायी नहीं देता है।

तिरूचि

गृह स्थान–तमिलनाडु के तिरूचि, अरकोट, सलेम और धर्मपुरी जिले। पशु छोटा एवं पूरी तरह से काले शरीर वाला होता है। नर सींग युक्त व मांदा सींग रहित होती है। कान छोटे तथा नीचे एवं आगे की तरफ झुके होते हैं। पूंछ छोटी एवं पतली होती है। ऊन पूरी तरह से मोटी बालों वाली होती है।

केंगूरी

गृह स्थान–कर्नाटक का रायचूर जिला। मध्यम आकार का पशु। प्रायः शरीर का रंग गहरा भूरा एवं सफेद से काले रंगयुक्त होता है, किन्तु विभिन्न प्रकार के रंग युक्त पशु भी पाये जाते हैं। नर सींग युक्त व मादा सींग रहित होती है।

स्वदेशी कुक्कुट जर्मप्लाज्मः कुक्कुट उत्पादन में सुधार के लिए एक परिसंपत्ति

रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत, प्रियंका शर्मा, प्रदीप विज एवं मधुसूदन टांटिया

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल–132001

पोल्ट्री दुनिया भर में प्रोटीन के स्वीकार्य रूप में पाली जाती है। पोल्ट्री उत्पादों (अंडा एंव मांस) की मांग में लगातार वृद्धि हो रही है क्योंकि इन उत्पादों का पोषक मूल्य एवं व्यापक स्वीकार्यता अन्य पशु प्रोटीनों की तुलना में कहीं अधिक है एंव उत्पादन लागत कम है। भारत का विश्व में अंडा उत्पादन (56 अरब अंडे) में तीसरा तथा ब्रॉयलर उत्पादन में (2.6 मिलियन टन) पांचवा स्थान है। अंडे की प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष उप्लब्धता 55 और ब्रॉयालर मांस की 1.9 कि.ग्रा. है जो कि आई.सी.एम.आर. की सिफारिश (अंडा–180, ब्रॉयलर मांस–10.8 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष) से बहुत कम है। यह भी ध्यान देने का विषय है कि शहरी क्षेत्रों में खपत 100 अंडे व 1.2 कि. ग्रा. मांस प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है जबकि इससे विपरीत गाँव में यही खपत 15 अंडे व 0.15 कि.ग्रा. मांस प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में पोल्ट्री उत्पादों की उपलब्धता को कुशल ग्रामीण पोल्ट्री उत्पादन प्रणाली के विकास द्वारा सुधारने की अत्यंत आवश्यकता है क्योंकि देशी पक्षियों की उत्पादन क्षमता कम है। अतः समय की मांग ऐसी उन्नत किस्में विकसित करने की है जोकि कम पोषण आवश्यकता के साथ–साथ विषम परिस्थितियों में अच्छा प्रदर्शन भी कर सकें।

भारत एक विशाल देश है जहाँ मुर्गी पालन का एक प्राचीन इतिहास है। लगभग 5400 वर्ष पूर्व जंगली मुर्गी से पालतू मुर्गी (गैलस गैलस) का विकास उद्देश्यपूर्ण प्रजनन के माध्यम से हुआ था। यहाँ पर पाये जाने वाली भिन्न–भिन्न पर्यावरण परिस्थितियों के कारण अनेक देशी नस्लें विकसित हुई हैं। परन्तु देशी पक्षियों की लोकप्रियता में लगातार गिरावट आ रही है, जिसका कारण उनकी कम उत्पादक क्षमता, ब्रूडीनेस, शरीर तथा अंडो का छोटा आकर तथा देर से होने वाली यौन परिपक्वता है। पिछले दशक के दौरान कई अन्य विकासशील देशों की तरह हमारे देश में भी पशु प्रोटीन की मांग में वृद्धि हुई है। इसको पूरा करने के लिए गहन उत्पादन को एक अनुकूल उपाय के रूप में देखा जा रहा है क्योंकि पोल्ट्री देश के विभिन्न वातावरण के अनुकूल स्वयं को काफी हद तक ढ़ाल लेती है। इसकी उत्पादकता की दर भी अधिक होती है जिससे इसकी कीमत अपेक्षाकृत कम होती है। दुनिया भर से अधिक उत्पादन क्षमता वाली नस्लों के आयात में वृद्धि के बावजूद आज भी मूल वातावरण में देशी पक्षियों ने अपनी वरीयता बरकरार रखी है। देशी मुर्गी पालन द्वारा आजीविका के संसाधन के रूप में बहुमुखी आयाम हैं और इनके महत्त्व को कभी भी कम नहीं आँका जा सकता। इसकी महत्ता को सदैव मुद्रक मूल्य में भी नहीं आँका जाना चाहिए क्योंकि मुर्गी पालन सामाजिक एंव सांस्कृतिक परिवेश का अंश भी है। इनका सबसे अधिक योगदान ग्रामीण परिवेश में सृजन तथा भोजन के रूप में इनकी खपत है। देशी मुर्गी हमेशा ही ग्रामीण एंव आदिवासी क्षेत्रों में स्थानीय लोगों की पहली पसंद रही है। इसका कारण मुख्यतः प्रतिकूल वातावरण में रहने की क्षमता तथा इनकी रोग प्रतिरोधी क्षमता है। अतः इन इलाकों की आर्थिक प्रगति में भी इनका श्रेय है। देशी मुर्गियां कुशल माताएं भी होती है तथा विशेष देखभाल की आवश्यकता न होने के कारण कम लागत में भी पाली जा सकती हैं। स्वदेशी मुर्गियों की निम्नलिखित विशेषताएं उन्हें विदेशी पक्षियों पर श्रेष्ठता प्रदान कराती हैं:

1. रंगीन देशी पक्षियों की भूमिहीन मजदूरों व् सीमांत किसानो में स्वीकार्यता
2. ब्रूडीनेस का स्वभाव

3. कम शारीरिक वजन, लम्बी टांगे, छुपने का स्वभाव, सतर्कता व आक्रमकता के कारण आत्मरक्षा का गुण।

4. प्रतिकूल आवास, प्रबंधन व खान पान की स्थिति में भी रह सकने की क्षमता।

5. स्वदेशी पक्षियों की विदेशी पक्षियों की अपेक्षा प्रोटोजोआ एंव बाह्य परजीवियों के लिए प्रतिरोध क्षमता, जिसके फलस्वरूप स्वास्थ्य देखभाल की कम आवश्यकता।

6. देश में पाई जाने वाली चरम जलवायु परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन क्षमता।

7. देशी मुर्गियों के मांस में एमिनो एसिड (ऑरजीनीन एंव लाईसिन) की बहुलता। इसके अतिरिक्त स्वाद, रंजकता, कम वसा एंव कुछ विशेष व्यंजनों के लिए उपयुक्त होने के कारण प्रायः अधिक कीमत होना।

8. देशी मुर्गियों के भूरे खोलदार अंडो में एमिनो एसिड (थ्रीओनीन व वेलिन) की अधिकता होती है तथा खास स्वाद के कारण इन्हें अधिक कीमत मिलती है।

देशी मुर्गियों की नस्लें

1. **अंकलेश्वर:** गुजरात के भरूच और नर्मदा जिलों में वितरित हैं। इन पक्षियों को मुख्य रूप से मांस और अंडे के लिए उपयोग किया जाता है। पक्षी का रंग मुर्गियों में काला गोल्डन है जबकि मुर्गो में सुनहरा पीला है। कलगी लाल है और एकल या गुलाब प्रकार की है। नर और मादा पक्षी का औसत वजन क्रमशः 1.76 और 1.49 कि.ग्रा. है। औसत वार्षिक अंडा उत्पादन 79 है।

2. **असील:** अच्छी तरह से अपनी तीक्ष्णता, उच्च शक्ति, मैजेस्टिक चाल और हठी लड़ने के गुणों के लिए जाना जाने वाला एक खेल पक्षी है। छत्तीसगढ़ के बस्तर और दांतीवाडा जिलों, उड़ीसा के कोरापुट और मलकानगिरी जिलों और आन्ध्र प्रदेश का खमाम जिला इस स्वदेशी नस्ल के घर हैं। पक्षी आम तौर पर लाल और काले या भूरे और काले हैं। कलगी मटर के आकार की और छोटी है। मुर्गे का औसत वजन 4 किलोग्राम और मुर्गी का 2.59 किलोग्राम है। औसत वार्षिक अंडा उत्पादन 33 है।

3. **बसरा:** यह महाराष्ट्र के नासिक एंव नंदुरबार तथा गुजरात के सूरत और डांग जिलों में पायी जाती है। मुर्गे का औसत भार 1.11 कि.ग्रा. तथा मुर्गी का 0.98 कि.ग्रा. तक होता है। वार्षिक अंडा उत्पादन 40–55 तथा अन्डों का वजन 28–38 ग्राम के बीच पाया जाता है। एकल कलगी का आकार छोटा अथवा मध्यम एंव रंग लाल होता हैं।

4. **डंकी:** मुख्यतः विजयनगर तथा उससे सटे हुए श्रीकाकुलम एंव विशाखापट्टनम जिलों में वितरित है। इनका मुख्यतः इस्तेमाल पक्षियों की लड़ाई के खेल में होता है। पक्षी अधिकतर भूरे रंग की होती है। मुर्गे तथा मुर्गियों का औसत भार क्रमशः 3.12 और 2.22 कि.ग्रा. होता है। साल भर में डंकी मुर्गी 25–35 अंडे देती है जिसका औसत वजन लगभग 46 ग्राम होता है।

5. **दयोथीगिर:** आसाम के बोडोलैंड क्षेत्र– कोकराझार, बाड़पेटा, नालबाड़ी एंव ध्रुवरी जिले का कुछ भाग इनका प्रजनन क्षेत्र है। पंछी का आकार छोटा शरीर गठा हुआ एवं भारी तथा लम्बी टांगे होती हैं। पक्षी का रंग मुख्यतः काला होता है। मुर्गे का औसत वजन 1.79 कि.ग्रा. एंव मुर्गी का 1.63 कि.ग्रा. तक पाया जाता है। अंडे का भार 42–84 ग्रा. एंव वार्षिक उत्पादन 60–70 तक होता है।

6. **घागस:** कर्नाटक के कोलार एंव बेंगलूरु तथा आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर और अनंतपुर जिलों में पाए जाने वाले पक्षी मुख्यतः काले रंग के होते हैं। मुर्गे एंव मुर्गियों का वजन औसत 2.16 और 1.43 कि. ग्रा. तक एंव वार्षिक अंडा उत्पादन 45–60 तक

होता है। अंडे का औसत भार 40 ग्राम के लगभग होता है।

7. **हरिनघटा ब्लैक :** यह नस्ल मांस और अंडे दोनों के लिए उपयुक्त है। इसका वितरण क्षेत्र पश्चिम बंगाल का नादिया जिला है। पक्षी का रंग काला, मुर्गी का औसत भार 1.12±0.02 कि.ग्रा, मुर्गे का औसत भार 1.28±0.06 कि.ग्रा. और अंडे का औसत भार 36.53±1.07 ग्रा. होता है।

8. **कड़कनाथ :** पश्चिम मध्य प्रदेश में पाई जाने वाली इस नस्ल को झाबुआ और धार जिले के आदिवासियों द्वारा पाला जाता है। इस नस्ल की विशेषता इसके आतंरिक अंगो का काले रंग का होना है। मेलेनिन पिगमेंट के जमाव् के कारण ही अंगो का रंग काला हो जाता है। यही कारण है कि आम भाषा में इन मुर्गियों को कालामासी के नाम से भी जाना जाता है। मुर्गे का औसत वजन 1.6 तथा मुर्गी का 1.13 कि.ग्रा. होता है। वार्षिक अंडा उत्पादन लगभग 80 तथा अंडे का भार 40 ग्राम होता है।

9. **कालस्थी :** इस नस्ल को मुख्यतः आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर, नेल्लोर तथा कुडप्पाह जिलों में पाया जाता है। इन पक्षियों को मुख्यतः मांस के लिए पालते हैं। हालाँकि लड़ने के लिए भी कभी–कभी इनका प्रयोग होता है। पक्षी का रंग अधिकांशतः भूरा और थोड़ा कालापन लिए होता है। मुर्गे तथा मुर्गियों का औसत वजन क्रमशः 2.48 एंव 1.85 कि.ग्रा. होता है। औसत वार्षिक अंडा उत्पादन 34 के आस–पास और एक अंडे का औसत वजन 43 ग्रा. तक होता है।

10. **काश्मीर फेवरोल्ला :** इस नस्ल के पक्षी जम्मू–कश्मीर प्रान्त के अनंतनाग, बारामुला, बड़गाम, कुपवाड़ा, श्रीनगर और पुलवामा जिलों में उपलब्ध हैं। पक्षियों को मांस एंव अंडा उत्पादन दोनों के लिए पाला जाता है। पक्षी मिश्रित रंग के तथा कलगी एकल व लाल रंग की होती है। वयस्क मुर्गे का वजन औसतन 1.88 तथा मुर्गी का 1.41 कि.ग्रा. होता है। प्रतिवर्ष अंडा उत्पादन 60–85 तथा अंडे का औसत भार 45.7 ग्राम होता है।

11. **मिरी :** इस नस्ल के पक्षी मुख्यतः आसाम के घिमाजी, उत्तरी लखीमपुर, शिवसागर, डिब्रुगढ़ तथा अपर आसाम के मंझौली आइलैंड में पाए जाते हैं। इनको मांस एंव अंडा उत्पादन दोनों के लिए पाला जाता है। इनका रंग मुख्यतः सफेद होता है। मुर्गे तथा मुर्गी का औसत भार क्रमशः 1.53 एंव 1.06 कि.ग्रा. होता है। वार्षिक अंडा उत्पादन 62 और औसत भार 42 ग्रा. होता है।

12. **निकोबारी :** इस नस्ल के पक्षियों को निकोबार द्वीप समूह एंव अंडमान के कुछ द्वीपों में पाया जाता है जहाँ इनको मुख्यतः अन्डो के लिए पालते हैं। इनका रंग भूरा–मटमैला होता है। ज्यादातर एकल लाल रंग की कलगी पाई जाती है। मुर्गे तथा मुर्गी का औसत भार क्रमशः 1.80 तथा 1.33 कि.ग्रा. होता है। वार्षिक अंडा उत्पादन 112 से 237 तक हो जाता है। अंडों का औसत वजन लगभग 49 ग्रा. होता है।

13. **पंजाब ब्राउन :** पंजाब एंव हरियाणा में पाई जाने वाली इस नस्ल को अंडा एंव मांस दोनो के लिए ही पाला जाता है। पक्षी का रंग अधिकतर भूरा व कलगी लाल रंग की होती है। मुर्गे एंव मुर्गी का औसत वजन 2.15 एंव 1.57 कि.ग्रा. होता है। अंडे का औसत वजन 46 ग्रा. है तथा वार्षिक उत्पादन 60–80 तक होता है।

14. **तेल्लिचेरी :** मुख्यतः केरल के कालीकट तथा उससे सटे हुए कन्नूर और मलप्पुरम जिलों में एंव पांडिचेरी के माहे जिले में इस नस्ल के पक्षी पाए जाते हैं। इन्हें मुख्यतः मांस के लिए पाला जाता है। पक्षी का रंग काला होता है तथा पंखो पर नीले रंग की चमक पाई जाती है। मुर्गे का औसत वजन 1.62±0.16 कि.ग्रा. और मुर्गी का 1.24±0.10 कि.ग्रा. होता है।

वार्षिक अंडा उत्पादन 60–80 तक तथा अंडे का भार 40 ग्राम (औसत) होता है।

15. **मेवाड़ीः** यह नस्ल राजस्थान के अजमेर, सिरोही, जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, डूंगरपुर, बांसवाडा, राजसमंद, चित्तौड़गढ़ और प्रतापगढ़ जिलों में मिलती है। पक्षियों का आकार छोटा अथवा मध्यम श्रेणी का है। इन्हें अंडे तथा मांस दोनों के लिए पाला जाता है। पक्षी हल्के तथा गहरे भूरे रंग से लेकर स्लेटी रंग के होते हैं। मुर्गे का वजन औसतन 1.9 कि.ग्रा. तथा मुर्गी का 1.2 कि.ग्रा. होता है। वार्षिक अंडा उत्पादन 37–53 तक हो सकता है जबकि अंडे का औसत भार 53 ग्रा. होता है।

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल द्वारा देशी चिकन की सोलह नस्लों को अब तक पंजीकृत किया गया है (तालिका 1)।

तालिका 1. पंजीकृत मुर्गियों की नस्लें

क्र.सं.	नस्ल	गृह क्षेत्र	प्राप्त क्रमांक
1	अंकलेश्वर	गुजरात	भारत–चिकन–0400–अंकलेश्वर–12001
2	असील	छतीसगढ़, उड़ीसा और आंध्र प्रदेश	भारत–चिकन–2615–असील–12002
3	बुसरा	गुजरात, महाराष्ट्र	भारत–चिकन–0411–बुसरा–12003
4	चित्तागोंग	मेघालय और त्रिपुरा	भारत–चिकन–1319–चित्तागोंग–12004
5	डंकी	आंध्र प्रदेश	भारत–चिकन–0100–डंकी–12005
6	दयोथीगिर	असम	भारत–चिकन–0200–दयोथीगिर–12006
7	घागस	आंध्र प्रदेश	भारत–चिकन–0108–घागस–12007
8	हरीनघटा ब्लैक	पश्चिम बंगाल	भारत–चिकन–2100–हरीनघटाब्लैक–12008
9	कड़कनाथ	मध्य प्रदेश	भारत–चिकन–1000–कड़कनाथ–12009
10	कलस्थी	आंध्र प्रदेश	भारत–चिकन–0100–कलस्थी–12010
11	कश्मीर फेवरोल्ला	जम्मू एवं कश्मीर	भारत–चिकन–0700–कश्मीरफवोरोल्ला–12011
12	मिरी	असम	भारत–चिकन–0200–मिरी–12010
13	निकोबारी	अंडमान एवं निकोबार	भारत–चिकन–3300–निकोबारी–1203
14	पंजाब ब्राउन	पंजाब और हरियाणा	भारत–चिकन–1605– पंजाबब्राउन–12014
15	तेल्लीचेरी	केरल	भारत–चिकन–0900– तेल्लीचेरी–12015
16	मेवाड़ी	राजस्थान	भारत–चिकन–1700– मेवाड़ी–12016

देशी नस्ल के विभिन्न जीन के मुख्य स्रोत

देशी नस्लों में यहां के वातावरण तथा प्रजनन अपेक्षाओं के अनुरूप विभिन्न जीन एंव उनके एलील पाये जाते है। भविष्य की अप्रत्याशित आवश्यकताओं के अनुकूल आनुवंशिक संसाधनों को संजोए रखने के लिए स्थानीय नस्लों का संरक्षण आवश्यक है। देशी पक्षियों की रूपात्मक विशेषताओं में बहुत भिन्नता पाई जाती है। शरीर के वजन के अनुसार इन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता हैः छोटी, सामान्य एंव भारी नस्लें। पक्षी रंजकता में मुख्यतः काला व भूरा रंग पाया

जाता है। टांग और त्वचा अक्सर पिग्मेंटेड होती हैं जिसमें हरे और नीले रंग की बहुलता देखी गई है। इसके अतिरिक्त कुछ नस्लों (जैसे कि कड़कनाथ) में त्वचा, मांस, आन्तरिक अंगो व हड्डियों में मेलेनिन संग्रहित होता है। इस प्रकार के रूपात्मक वेरिएंट्स प्रमुख रूपात्मक मार्कर की उपस्थिति के कारण होते हैं और यह भिन्नता उष्णकटिबंधीय जलवायु में इन नस्लों की अनुकूलन क्षमता को बढ़ाती है। इस प्रकार के कुछ जीन तालिका–2 में विस्तृत किये गए हैं।

तालिका 2. स्थानीय मुर्गियों में पाए जाने वाले उष्ण कटिबंधीय प्रासंगिक जीन

जीन	प्राकृतिक विरासत	प्रत्यक्ष प्रभाव	अप्रत्यक्ष
DW (ड्वार्फ)	सेक्स से जुड़ा, प्रतिसारी, कई एलील वाला	शरीर के आकार में 10–30% की कमी	कम चयापचय, सेहत में सुधार, रोग प्रतिरोधी क्षमता का विकास
NA (नेकेड नेक)	अधूरी प्रधानता	गर्दन का पंख रहित होना, सेकेंडरी पंखो का कम होना	संवहन क्षमता में सुधार, बेहतर व्यस्क सेहत
FC (फ्रीजल)	अधूरी प्रधानता	पंखो की कम संख्या एंव घुंघराला होना	संवहन क्षमता में सुधार
KC (स्लो फेदरिंग)	प्रधान (डोमिनेंट), सेक्स बाध्य, कई एलील वाला	देरी से पंखो का आना	कम प्रोटीन की आवश्यकता, किशोरावस्था में कम वसा जमाव, प्रारम्भिक विकास के दौरान अधिक ऊर्जा संवहन, प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया तंत्र का विलम्ब से सक्रीय होना
HC (सिल्की)	प्रतिसरी	नाजुक शाफ्ट, कंटूर पंखों पर लम्बी बार्ब होना	संवहन क्षमता में सुधार
ID (नॉन इन्हिबिटर ऑफ डरमल मेलेनिन)	प्रतिसरी, सेक्स, बाध्य, कई एलिल वाला	त्वचा और टांग पर मेलेनिन जमाव	टांग व त्वचा द्वारा विकिरण की अधिक क्षमता
FM (फाईब्रोमेलेनोसिस)	प्रधान एंव बहुघटीय संशोधक	मांसपेशियों, नसों, टेंडन, अन्त्रपेशी, रक्तावाहनियों की दीवारों एंव शरीर पर मेलेनिन का जमाव होना	पैराबैंगनी विकिरण से त्वचा की सुरक्षा, त्वचा की अधिक विकिरण क्षमता, बढ़ी हुई पैक सैल एंव प्लाज्मा प्रोटीन मात्रा

अधिक उत्पादन वाले पक्षियों की उष्ण कटिबंधीय अनुकूलन क्षमता में सुधार के लिए देशी जर्मप्लाज्म के उपयोग की संभावनाएं :

पिछले तीन दशकों में भारत के पोल्ट्री उत्पादन में अत्यधिक विकास हुआ है, जिसमें उच्च उत्पादन वाले देशी जर्मप्लाज्म ने प्रमुख योगदान दिया है। अधिक उत्पादन देने वाली विदेशी नस्लें मुख्यतः शीतोष्ण जलवायु क्षेत्रों से आई हैं। भारत के विशाल भौगोलिक क्षेत्र में गर्म, आद्र, तटीय भाग भी हैं और इन क्षेत्रों में विदेशी नस्लें अपनी पूरी उत्पादन क्षमता को व्यक्त नहीं कर पाती हैं। गर्मी और

उमस वाले महीनो में इनमें खाने की कमी तथा अन्डों के उत्पादन एंव गुणवत्ता में कमी देखी जाती है। भारत के गरीब किसानों के परिपेक्ष में मुर्गियों के रहने वाले स्थान को बिजली के उपकरणों द्वारा ठंडा रखना संभव नहीं है, वो भी जब इन इलाकों में बिजली की कमी सामान्य बात है। अतः इन अधिक उत्पादन वाली मुर्गियों में गर्मी सहने वाली क्षमता का सुधार एक अच्छा विकल्प हो सकता है गर्मी की सहनशीलता में सुधार निम्न तरीकों से संभव है:

1. पंखो रहित त्वचा के क्षेत्र को बढ़ाना
2. बुनियादी चयापचय में कमी
3. पंखो के घने पन में कमी
4. चुने हुए रंगों को बढ़ावा देना

उष्ण कटिबंधीय उन्मुख प्रमुख जीन उपरोक्त गतिविधियों को प्राप्त करने में सक्षम हैं। परन्तु यह सभी जीन अधिक उत्पादन वाली विदेशी मुर्गियों में लगभग न के बराबर पाए जाते हैं। इसलिए देशी मुर्गियों के जीनोम एंव प्रमुख जीन की पहचान के लिए व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता है। ऐसे ही प्रयास केन्द्रीय पक्षी अनुसन्धान संस्थान, इज्जतनगर में हो रहे हैं। इसके फलस्वरूप स्लोफेदरिंग (K), नॉन इन्हिबिटर डरमल मेलेनिन (ID), फाइब्रोमेलेनोसिस (FM), नेकेड नेक (NA) तथा फ्रिजलिंग (F) इत्यादि प्रमुख जीन की पहचान, भारतीय मुर्गियों में की गई है। यहीं के अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि विदेशी मुर्गियां देशी मुर्गियों से प्रतिरक्षण प्रणाली में कमजोर हैं। यह तथ्य भारतीय मुर्गियों की अधिक रोग प्रतिरोधी क्षमता होने के दावों को प्रबल करता है।

विदेशी जर्मप्लाज्म की उष्ण कटिबंधीय अनुकूलन क्षमता विकसित करने में देशी जर्मप्लाज्म का योगदान

देशी मुर्गियों के नेकेड नेक और फ्रिजलिंग जीन के उपयोग से विदेशी मुर्गियों के विषम जलवायु अनुकूलन का कार्य एक दशक से चल रहा है। परिणाम स्वरूप मुर्गियों की दो ब्रोयलर नस्लें, कारी मृत्युंजय (नेकेड नेक जीन के साथ) व कारी ट्रॉपीकाना (नेकेड नेक व फ्रिजल जीन के साथ) विकसित की गई। इन ब्रॉयलर मुर्गियों में उष्णकटिबंधीय अनुकूलन क्षमता कहीं अधिक है। इस दिशा में कार्य वर्तमान में भी अग्रसर है जिससे निकट भविष्य में और बेहतर ब्रॉयलर नस्लें बनने की उम्मीद है।

पारिवारिक इकाइयों द्वारा पाली जाने वाली मुर्गियों की नस्लों में सुधार के लिए देशी जर्मप्लाज्म का उपयोग

ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में देश भर की मुर्गियों का 38% पाया जाता है। हालाँकि उनके कम उत्पादन (50–60 अंडे प्रतिवर्ष) के कारण उनका योगदान कुल अंडा उत्पादन में 21% ही है। शहरों के मुकाबले, गाँवो में अंडे व मुर्गी के मांस की कीमत भी अधिक आंकी जाती है। इसलिए ग्रामीण व आदिवासी क्षेत्रों में पिछवाड़ा मुर्गी पालन के विकास की पर्याप्त संभावना है। पिछले तीन दशकों में स्केवेंजिग मुर्गियों की लोकप्रियता उनके कम अंडा उत्पादन क्षमता के कारण बहुत घटी है। भारत में विकसित की गई, ग्रामीण क्षेत्रों में पाली जाने वाली मुर्गियों की संकर नस्लें: कारी वनराजा, गिरिराज, कारी देवेन्द्र (मांस के लिए) तथा कृष्णा–जे, कृषिप्रिया, ग्रामप्रिया एंव कारी गोल्ड प्रमुखतयः विदेशी नस्लों अथवा लाइनों की क्रॉसिंग से बनाई गई हैं। अतः ग्रामीण परिवेश में इनसे लाभकारी उत्पादन प्राप्त करना आसान नहीं है। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के साथ–साथ ही इनका आदिवासी क्षेत्रों में कम प्रभावी वातावरण अनुकूलन, शिकारियों के प्रति सतर्कता में कमी, कम रंग छलावन, दौड़ने की कम क्षमता तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में उच्च मृत्यु दर इनके लोकप्रिय होने में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। आदिवासी समाज का एक बड़ा वर्ग, जो स्केवेंजिग मुर्गियों को पालता है, उनके लिए खासकर बेहतर प्रबंधन सुविधाओं को जुटाना कठिन कार्य है। वास्तविक रूप में देखा जाये तो ग्रामीण पोल्ट्री कम लागत और लाभ के सिद्धांत पर आधारित "संतुलित कृषि" का हिस्सा है। अतः संकर नस्लों का प्रचलन इस परिवेश की मुर्गी पालन समस्याओं का सम्पूर्ण समाधान नहीं है। यहाँ पाली जाने वाली मुर्गियों में निम्न विशेषताओं को समाहित करना चाहिए:

1. **पक्षी का रंगः** ग्रामीण क्षेत्रों में रंगीन पक्षियों को अत्यधिक पसंद किया जाता है। इसका कारण सुन्दरता नहीं बल्कि पक्षियों के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। आस–पास के परिवेश में समायोजित होने के कारण सफेद अथवा हल्के रंग की मुर्गी की अपेक्षा रंगीन पक्षियों के शिकारी जानवरों से बचने की सम्भावना अधिक होती है। इसके अतिरिक्त, रंगीन पक्षियों में इम्युनोकम्पिटेंस भी अधिक होता है।

2. **पक्षी की बाह्य संरचना एंव स्वभावः** घर के बाहर पाली जाने वाली मुर्गियों को जंगली बिल्लियों एंव आवारा कुत्तों का खतरा सदा ही बना रहता है। अतः शरीर का भार कम होने से लम्बी टांग और मजबूत पंखो वाला पक्षी तेजी से भाग कर अथवा उड़कर सुरक्षित स्थान पर पहुँच सकता है। मुर्गियों का आक्रामक व्यवहार भी कुछ हद तक शिकारियों के लिए निवारक सिद्ध होता है।

3. **पक्षियों की उत्पादकताः** ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक भारी मुर्गियां भी वांछनीय नहीं हैं। पोषक तत्वों की उपलब्धि कम होने के कारण भोजन प्राप्त करने के लिए पक्षियों को दूर जाना पड़ता है। अतः हल्की मुर्गियां ही बेहतर साबित होती हैं।

4. **रोग प्रतिरोध क्षमताः** इन पक्षियों की रोगों से लड़ने की क्षमता भी अधिक होनी चाहिए क्योंकि उनके रहने का स्थान एंव पीने का पानी भी अधिकतर गन्दा होता है। उस पर दूर–दराज के इलाकों में रोग–निरोधक उपाय करना भी संभव नहीं हो पाता।

इन सबके अतिरिक्त उष्णकटिबंधीय अनुकूलता तथा मुर्गियों में ब्रूडीनेस गुण का होना भी आवश्यक है।

देशी कुक्कट जर्मप्लाज्म पर आधारित स्केवेंजिंग मुर्गियों का विकास

केंद्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर द्वारा घर के पिछवाड़े में मुर्गी पालन हेतु चार नयी, अधिक उत्पादन देने वाले जर्मप्लाज्म को चार विभिन्न देशी मुर्गियों की नस्ल को आधार बनाकर विकसित (तालिका–3) किया गया है।

तालिका 3: फार्म तथा फील्ड में मुर्गियों के आर्थिक लक्षण

लक्षण	कारी निर्भीक		कारी श्यामा		उपकारी		हितकारी	
बीस सप्ताह में पुलेट का	फार्म	फील्ड	फार्म	फील्ड	फार्म	फील्ड	फार्म	फील्ड
शारीरिक भार (ग्राम)	1350	1290	1120	1080	1285	1184	1320	1280
यौन परिपक्वता की आयु (दिन)	176	174	170	167	165	165	178	172
वार्षिक अंडा उत्पादन (संख्या)	198	166	210	178	220	182	200	174
मुर्गी (40सप्ताह) के अंडे का वजन (ग्राम)	54	53	53	52.5	60	58	61	59
फर्टिलिटी (%)	88	–	85	–	90	–	92	–
हैचेबिलटी FES (%)	81	–	82	–	84	–	81	–

चित्र 1. कारीहितकारी

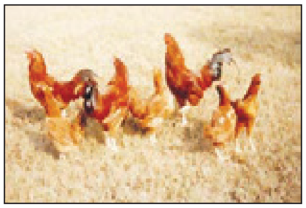
चित्र 2. कारीनिर्भीक

चित्र 3. कारीश्यामा

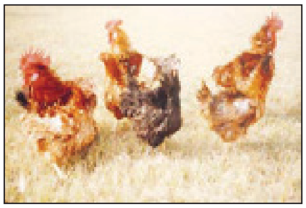
चित्र 4. कारीउपकारी

स्रोतः केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर। वेबसाइट www.icar.gov.in/cari/varieties-deve.php

इन पक्षियों में 50% देशी व 50% विदेशी रक्त संयोजित है। इनमें ग्रामीण व आदिवासी इलाकों के लिए आवश्यक विशेषताएं भी निहित हैं। पक्षी दिखते तो देशी नस्ल की तरह ही हैं परन्तु अंडा उत्पादन की क्षमता में दो से तीन गुना वृद्वि हुई है। इनके अण्डों का भार भी अधिक होता है तथा इनमें बेहतर रोग प्रतिरोध क्षमता तथा उष्णकटिबंधीय अनुकूलनशीलता भी है।

1. **कारी निर्भीक:** यह भारतीय मुर्गी नस्ल असील तथा कारी रेड का क्रास है। यह मुर्गियाँ सक्रीय स्वभाव, बड़े ढांचे, राजसी चाल व उच्च दाम के साथ ही साथ तीखे स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं। अपनी सक्रियता तथा आक्रामक स्वभाव के कारण स्वयं को शिकारी जानवरों से बचने में सक्षम हैं। यह देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के लिए भी अनुकूल हैं।

2. **कारी श्यामा:** यह भारतीय कड़कनाथ नस्ल तथा कारी रेड का क्रास है। मुर्गियों की त्वचा, चोंच, टांग, पैर और तलवे सभी गहरे स्लेटी रंग के होते हैं। इस पक्षी की खासियत इसके आन्तरिक अंगो का काले रंग का होना है। यहाँ तक की कंकाल की मांस पेशियाँ, तंत्रिका, मस्तिष्क और अस्थिमज्जा में भी काला रंग पाया जाता है जोकि मेलेनिन पिग्मेंट के जमा होने के कारण होता है। इनके मांस में प्रोटीन अधिक मात्रा में, वसा कम मात्रा में तथा कम लम्बे मांसपेशी फाइबर होते हैं। आदिवासी क्षेत्रों में काले मांस की वरीयता को देखते हुए उन क्षेत्रों के लिए श्यामा पक्षी उपयोगी है।

3. **उपकारी:** फ्रीजल पंख वाली देशी मुर्गी को कारी रेड से क्रास कर उपकारी पक्षियों को बनाया गया है। इन बहुरंगीय पक्षियों में एकल कलगी पाई जाती है, तथा यह शारीरिक भार के हिसाब से मध्यम आकार के होते हैं। फ्रीजल पक्षी गर्मी के अपव्यय में सहायता करती है। यही कारण है कि ये पक्षी शुष्क क्षेत्रों के लिए अति उत्तम है।

4. **हितकारी:** इन पक्षियों का विकास नेकेड नेक नामक देशी नस्ल तथा कारी रेड के क्रास से किया गया है। इनकी गर्दन पूर्ण रूप से पंख रहित होती है तथा शरीर पर भी पंखो की संख्या 30–40% तक कम होती है। पंखों की कमी के कारण आंतरिक अंगों से उर्जा अपव्यय अधिक होता है, जिसके कारण उष्ण कटिबंधीय अनुकूलन क्षमता भी बढ़ जाती है। परिणाम स्वरूप गर्मी के मौसम में भी अंडे का खोल पतला नहीं होता है। इसके अतिरिक्त इनमें गर्मी से होने वाली मृत्यु दर में कमी तथा प्रजनन क्षमता में वृद्वि भी पाई गई है। यह पक्षी गर्म व नम तटीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त हैं।

भावी संभावनाएं

देशी मुर्गियों में पाई जाने वाली भिन्नता (अंडे का भार, विकास दर, वयस्क भार) तथा भिन्न–भिन्न इकोटाइप्स का पाया जाना इनकी आनुवंशिक विषमता की तरफ इशारा करता है। देशी मुर्गियों की रूपात्मक विविधता, विभिन्न वातावरणों में इनकी अनुकूलता और रोग प्रतिरोधी क्षमता इनके समृद्व जीन पूल की तरफ संकेत करते हैं। अतः चयनात्मक प्रजनन द्वारा इनमें और सुधार किया जा सकता है।

एकल उद्देश्यों वाली उच्च उत्पादक नस्लों और लाइनों की आर्थिक महत्ता, स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बहुउद्देशीय देशी नस्लों की लोकप्रियता को विकृत कर रहें है। इन स्थानीय नस्लों के प्रतिस्थापन से न सिर्फ यह विलुप्त हो सकती हैं बल्कि इनकी आनुवंशिक विविधता को भी क्षति हो सकती है। वास्तविकता में देशी मुर्गी आनुवंशिक संसाधन उष्ण कटिबंधीय अनुकूलनशीलता और रोग प्रतिरोधी क्षमता वाले जीन के लिए सोने की खान हैं। अतः इनका उपयोग उच्च उत्पादन वाली विदेशी नस्लों के पर्यावरण अनुकूलन व रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। आनुवंशिक विविधता, जीनोमिक तंत्र के स्तर पर जैव विविधता, शारीरिक प्रक्रियाएं तथा रोग प्रतिरोधी क्षमता जैसे लक्षणों को

समझने से अन्य मुर्गियों की नस्लों में उत्तरदायी जीन परिवर्तित करने की संभावनाओं का गहराई से पता लगाया जा सकेगा।

अद्वितीय एलील तथा एलील सयोजकों का पता लगाना, उपस्थिति मात्रात्मक विशेषता (QTL) तथा विशिष्ट उत्पादन लक्षणों से उनके संबंधो को निर्धारित करने के लिए आवश्यक कड़ी है। इसके अतिरिक्त, देशी जर्म प्लाज्म घर के पिछवाड़े में पाला जाने वाली मुर्गियों के पालन को विकसित करने के लिए भी उपयोगी है। स्वदेशी मुर्गी आनुवंशिक संसाधनों को विकसित कर वांछनीय जीन और जीनोम को भी स्वतः ही संरक्षित किया जा सकता है। आज के युग और आने वाले समय में देशी उत्पादों की मांग के बढ़ने की प्रबल सम्भावना है क्योंकि इन्हें बहुत ही कम प्रयत्नों से "प्राकृतिक उत्पादों" (Organic Products) की श्रेणी में लाया जा सकता है। इनका भोजन भी प्राकृतिक होता है। अतः औद्योगिक अवशेष इनके उत्पादों में वैसे भी नहीं पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह तो सर्वसम्मत मान्यता है ही कि देशी मुर्गियों के उत्पाद (अंडा व मांस), स्वाद में विदेशी मुर्गियों के उत्पादों से श्रेष्ठ ही हैं। देशी मुर्गियों का प्रयोग आला बाजारों (niche market) के अनुरूप विशिष्ट नस्लों को विकसित करने में भी किया जा सकता है।

पोल्ट्री रिसर्च निदेशालय, हैदराबाद द्वारा स्वदेशी चिकन नस्लों के पूरे माईटोकोड्रियल जीनोम को अनुक्रमित कर लिया गया है। इसमें कुल 37 कोडिंग जीन हैं जोकि 13 प्रोटीन, 2 राइबोसोमल आर.एन.ए तथा 22 ट्रांसफर आर. एन.ए. को निर्धारित करते हैं। भारत की विभिन्न नस्लों के बीच जीनोम वेरिएबिलिटी भी पाई गई है जिनमें एस.एन. पी., सम्मिलन तथा विलोपन प्रमुख हैं। इन न्युक्लियोटाइड विभिन्नताओं को भविष्य में रोग तथा तनाव में लचीलेपन वाले लक्षणों से सम्बंधित मार्कर जीन की पहचान के लिए उपयोग किया जा सकेगा।

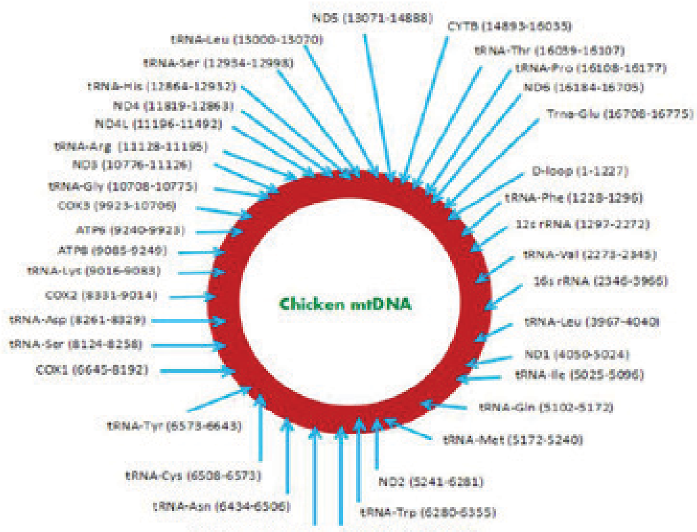

चित्र 5. मुर्गी पहली गैर स्तनधारी प्रजाति है जिसका पूरा जीनोम अनुक्रमित किया जा चूका है

स्रोत : भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् वेबसईट (www-icar-org-in)

जैव–विविधता: मानव जाति की जीवन रेखा

मनीषी मुकेश, प्रवेश कुमारी, बी के जोशी, प्रीती वर्मा, संदीप मान एवं मोनिका सोढ़ी
भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा) –132001

जैव विविधता सभी प्राणियों में पायी जाने वाली विभिन्नता व परिवर्तनशीलता का दर्पण है, और यह पृथ्वी के सबसे मूल्यवान प्राकृतिक उपहारों में से एक है। बैक्टीरिया से लेकर पेड़–पौधों और जानवरों की सभी प्रजातियाँ अपने आप में एक विशाल आनुवंशिक गुणों का स्रोत होती हैं और यह विविधता उन्हें पर्यावरण में खुद को बनाये रखने में सक्षम बनाती है। पृथ्वी पर जीवन की अंतहीन विविधता उपलब्ध है। अब तक लगभग 400 हजार पौधों तथा 130 लाख जानवरों की प्रजातियों को चिन्हित किया जा चुका है। लेकिन इसके अतिरिक्त अभी भी लाखों कीड़े, सूक्ष्म जीव, पक्षी, पौधे और जानवर ऐसे हैं जिनको चिन्हित किया जाना शेष हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जैव–विविधता के संदर्भ में हमारी उपलब्ध जानकारी घास के ढेर में पड़ी सुई के समान है।

जैव विविधता और विकास

जैव–विविधता प्रजातियों में पायी जाने वाली विभिन्नता और उनके लाखो वर्षो के लगातार विकास का परिणाम है। लाखों वर्ष पूर्व, जीवन के आधार "जीवद्रव्य" उत्पन्न हुए और इसके साथ ही पौधों और पशुओं के विकास का सिलसिला शुरू हुआ । ये जीवद्रव्य जीवित व् एककोशिकीय थे। धीरे–धीरे समय के साथ यह जीवद्रव्य बहुकोशिकीय और फिर जटिल जीवन रूप में बदलते गये अधिकतर पौधों की प्रजातियाँ शैवाल से उत्पन्न हुई हैं। इन पौधों की प्रजातियों का जीवन या तो सरल कोशिका विभाजन से या फिर बीजाणुओं द्वारा शुरू हुआ। फिर इन पौधों पर फूलों का विकास हुआ और बीजों की उत्पत्ति हुई। कुछ 500 मिलियन वर्ष पहले महासागर में जीव जंतुओं के जीवन की शुरुआत हुई और फिर एक लम्बे समय तक इन जीव–जंतुओं के विकास का क्रम जारी रहा और अंततः पृथ्वी पर मानव का जन्म हुआ।

भारत में जैव–विविधता

भारत न केवल सांस्कृतिक, भौगोलिक, सामाजिक और जलवायु विविधता से उपहारित है, बल्कि जैव–विविधता से भी सुशोभित है, जिसमें मुख्य रूप से स्थलीय जैव विविधता और समुद्री जैव–विविधता शामिल है। भारत का भौगोलिक क्षेत्र विश्व के कुल क्षेत्र का 2.5% है। इसके बावजूद विश्व की कुल प्रजातियों का 8 प्रतिशत भारत में पाया जाता हैं। भारत की जैव विविधता को विश्व में भी एक बहुत ही अनोखा स्थान प्राप्त है। भारत जैव–विविधता के 17 विशाल केन्द्रों में से एक है। विश्व के 34 जैविक आकर्षणों में से तीन – पश्चिमी घाट, पूर्वोत्तर भारत और हिमालयी क्षेत्र, भारत में स्थित हैं। भारत में कुल 126 हजार फूलों और जानवरों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं। अभी तक लगभग 81 हजार पौधों तथा 45 हजार जन्तुओं की पहचान कर उनका वर्णन किया जा चुका हैं। इसके अतिरिक्त, भारत में तकरीबन 800 फसल प्रजातियां, 320 जंगली पौध प्रजातियाँ और 3000 औषधीय पौध प्रजातियाँ भी शामिल हैं। भारतीय जीव–जंतुओं की प्रजातियों में 372 स्तनधारी, 1,228 पक्षी, 446 सरीसृप, 204 उभयचर, 2,546 मछलियाँ, 40,000 कीड़े और 5000 मोलस्क प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारत, कुल मिलाकर विश्व के क्रमशः 8.58% स्तनधारियों, 13.66% पक्षियों, 7.91% सरीसृप, 4.66% उभयचरों, 11.72% मछलियों और 11.80% पौधों की प्रजातियों का घर है। इनमें से कुछ प्रजातियाँ भारत में लगभग विलुप्त हो चुकीं हैं तथा कुछ विलुप्त होने के कगार पर हैं।

इस विलुप्ति के मुख्य कारण हैं –(i) पर्यावरण का असन्तुलन (ii) उचित लक्षणों के वर्णन में कमी (iii) अद्वितीय गुणों के विषय में कम जानकारी ।

जैव–विविधता एवं पर्यावरण का संतुलन

जैव विविधता का संरक्षण सुख सुविधा का साधन ही नहीं, बल्कि एक आवश्यकता है। हमारे जीवन को बनाये रखने के लिये पौधे, जानवर और सूक्ष्म जीव हमें कई आवश्यक सेवाएं प्रदान करते है जो हमारे अच्छे स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। जानवरों तथा पेड़–पौधों की देसी प्रजातियों में विशेष गुण धर्मो से सम्बंधित जीन अथवा जीन–समुच्य वंशानुगत तौर से उपस्थित होते हैं और हो सकता है कि यही गुण धर्म भविष्य में होने वाले जलवायु परिवर्तन के लिए भी बेहतर रूप से अनुकूल हों। इसलिए हमें विभिन्न प्रजातियों का संरक्षण उनमें होने वाले परिवर्तनों तथा उनके विशेष निवास स्थान के साथ करना होगा। जैव विविधता की सुरक्षा निम्नलिखित कारणों के लिए भी महत्वपूर्ण हैं:

पारिस्थितिकी स्थिरता एवं मूल्य: हर प्रजाति एक पारिस्थितिकी प्रणाली में एक विशेष कार्य करती है। उपलब्ध जैव–विविधता के वर्तमान व भविष्य में सतत् उपयोग हेतु योग्य बनाये रखने के लिये पारिस्थितिकी तंत्र का उचित रख–रखाव अत्यंत आवश्यक है। इस रख–रखाव के अंतर्गत वनों द्वारा जलवायु नियंत्रण, कीट नाश नियंत्रण, पौधों का परागीकरण, मिटटी की बनावट और संरक्षण, जल का शुद्धीकरण व् उसके पोषक तत्वों का संरक्षण, जलवायु परिवर्तन में स्थिरता, बाढ़, सूखा और अन्य आपदाओं में कमी व् वातावरण में गैसों का संचालन आदि शामिल हैं। उदाहरण के लिए स्पेक्बूम (पोर्टुलाकेरिय अफ्रा), कार्बन डाइऑक्साइड को नियंत्रण कर ग्लोबल वार्मिंग को रोकने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं। शोध बताते हैं कि पारिस्थितिकी तंत्र जितना अधिक विविध होगा वो उतना अधिक उत्पादक उतना ही बेहतर और पर्यावरण के स्ट्रेस (दबाव) का सामना करने में भी सक्षम होगा।

खाद्य एवम् औधोगिक उत्पाद: पशु, पक्षी, मछलियाँ, पौधे और वन मानव जीवनयापन के मुख्य साधन हैं। विश्व में पौधो की 30,000 प्रजातियाँ पायी जाती हैं और उनमें से केवल 30 फसल प्रजातियाँ ही मानव भोज्य पदार्थों के लिये उपयोग में लायी जाती हैं तथा उनमें से भी चावल, गेहूँ, मक्का, बाजरा आदि प्रमुख हैं जो भोजन से प्राप्त 95% उर्जा का संचार करती हैं। इसी तरह 40 में से केवल 14 पशु प्रजातियाँ विश्व के 82% भोजन और कृषि उत्पादन में योगदान देती हैं। दूध, मांस और अंडे भी इन्हीं जानवरों से प्राप्त होते हैं। गाय और भैंस के दूध से कई डेयरी उत्पाद जैसे कि – दही, मक्खन, आइसक्रीम इत्यादि बनाये जाते हैं जो कि प्रोटीन तथा कैल्शियम सहित कई उच्च गुणवता वाले पोषक तत्वों का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। हाल ही में दूध मे पाए जाने वाले प्रोटीन में से एक β–कैसिन के ए1 और ए2 अलील्स के मुद्दे ने काफी महत्व पाया हैं। क्योंकि यह धारणा है कि दूध में ए2 β–केसीन की खपत मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। जबकि ए1 दूध का उपयोग कई स्वास्थ्य सम्बंधी बीमारियों से जुड़ा हैं। राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (करनाल) में हुए अनुसंधान से हमें यह पता चला है कि हमारी सभी देशी पशु और भैंसों की नस्लें खासकर दुधारू नस्लों में β–कैसिन ए2 एलील बड़ी मात्रा में पाया जाता हैं और इसलिए यह मानव उपभोग के लिए सुरक्षित हैं। इसके अतिरिक्त ऊन, रेशम, फर, चमड़ा, जैसी कई वस्तुएँ हमें जानवरों से प्राप्त होती हैं। पशुओं का इस्तेमाल हम सामान ढ़ोने के लिए भी करते हैं। दूसरी ओर पेड़–पौधे हमें न केवल औद्योगिक उत्पाद जैसे तेल, स्नेहक, इत्र, कागज, मोम, रबर, लेटेक्स, रेजिन आदि प्रदान करते हैं बल्कि कपड़ो के लिए फाइबर, आवास और गर्मी के लिए लकड़ी भी प्रदान करते हैं।

पशु–जैव विविधता

पशुधन प्रजातियों का पालन लगभग 12,000 साल पहले शुरू हुआ। भोजन, परिवहन, ईंधन और अन्य कृषि प्रयोजनों के लिए मानव ने पशुओं को पालना शुरू कर दिया। हालांकि 40 स्तनधारी प्रजातियों को भोजन के लिए पाला जाता है लेकिन पशुधन से उत्पादन का प्रमुख योगदान केवल 14 प्रजातियों से ही रहा है। इन

पशुधन प्रजातियों के अंतर्गत लगभग दस हजार नस्लों को वर्गीकृत किया गया हैं। भारत दुनिया में सातवाँ सबसे बड़ा देश है और इसमें लगभग 75 प्रतिशत लोग कृषि और पशुपालन संबंधित व्यवसायों से जुड़े हुए हैं।

सदियों से, भारत जैव–विविधता का एक प्रमुख केंद्र रहा हैं। हम अत्यंत भाग्यशाली हैं कि हमारे पास स्वदेशी पशुओं के जर्मप्लाज्म की विस्तृत विविधता है। जो अपने वशिष्ट कृषि जलवायु क्षेत्रों में वितरित हैं और दुनिया के कई मेगा जैव विविधता केंद्रों में से एक हैं। भारत के पालतू पशुओं के व्यापक स्पेक्ट्रम का प्रतिनिधित्व भारतीय देशी पशु नस्लें–गोवंश (39), भैंस (13), भेड़ (40), बकरी (24), पोल्ट्री (16), उंट (9), घोड़ा (6) के अलावा मिथुन और याक सहित कुछ दुर्लभ प्रजातियों द्वारा किया जाता है। ये नस्लें अपनी एक या एक से अधिक विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध हैं क्योंकि सदियों से हमारी अधिकांश स्वदेशी नस्लें एक निश्चित जलवायु परिस्थितियों के तहत उपयोगिता के लिये विकसित हुई हैं और कुछ अद्वितीय गुण प्राप्त किए हैं। उनके यह गुण उन्हें दूसरी विदेशी नस्लों से अलग करते हैं और अपने विशिष्ट वातावरण के लिये उपयुक्त और उपयोगी बनाते हैं। प्राकृतिक रूप से विकसित होने के फलस्वरूप भारतीय नस्लें कठोर और चरम जलवायु परिस्थितियों के साथ–साथ स्ट्रेस में प्रचलित उष्णकटिबंधीय बीमारियों के लिए विकसित प्रतिरोधक गुण, अनुपजाऊ फसल और कम गुणवत्ता वाले चारे और पीने वाले पानी की कमी के कारण जीवन यापन करने के लिए अच्छी तरह से सक्षम हो गई हैं। अतः विविध देशी जर्मप्लाज्म में कई ऐसी महत्वपूर्ण जीन शामिल हैं जो आर्थिक और पर्यावरण अनुकूलन लक्षण रखती हैं।

विशाल पशुधन आनुवंशिक संसाधन भारतीय कृषि का एक अभिन्न अंग रहा है और इनकी कई नस्लों में न केवल जीवित रहने के लिए, बल्कि विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में उत्पादन, प्रजनन और मसौदा शक्ति को भी बनाए रखने की क्षमता भी है। उदाहरण के लिए, भारतीय मूल मवेशी पशु थारपारकर, नागौरी, साहीवाल, कांकरेज , राठी, गिर आदि में कठोर कृषि जलवायु क्षेत्र में जीवित रहने की क्षमता है। इसी तरह भारतीय भेड़ नस्लों में मौजूद विविधता भी उल्लेखनीय है। गैरोल भेड़ बहुअजता के लिए दुनिया भर में जानी जाती है। दूसरी ओर मालपुरा, चोकला, मारवाड़ी और शुष्क क्षेत्रों से अन्य कई भेड़ नस्लें रेगिस्तान स्थितियों के प्रति अच्छी तरह से अनुकूलित हैं। बकरी की भी कई ऐसी नस्लें हैं जो उच्च तापमान, नमी या दोनों परिस्थितियों के लिए अनुकूलित हैं, उदाहरण के लिए अंडमान बकरी लवणीय परिस्थितियों के लिए अनुकूलित है, चांगथंगी बकरी जो कि पश्मीना के लिए जानी जाती हैं, अधिक ऊंचाई के लिए अनुकूलित है जबकि जखराना अर्द्ध शुष्क स्थिति के लिए अच्छी तरह से अनुकूलित है। इसके अलावा, घोड़ों की जंसकारी एवम् स्पीति नस्लें और दो–कूबड़ ऊंट अधिक ऊंचाई पर ऑक्सीजन की कमी में भी काम करने की क्षमता के लिए प्रसिद्ध है। पोल्ट्री की कई देशी नस्लें जैसे कि अंकलेश्वर, असील, पंजाब ब्राउन, कड़कनाथ आदि अपने साहस, लड़ने की शक्ति तथा अंडे और मांस की गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। हाल ही में, राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो में देशी पशुओं और भैंसों को तापीय सहिष्णुता प्रदान करने के लिए जीन / अलील्स और नियामक तंत्र की पहचान और चिन्हित करने के प्रयास शुरू कर दिये हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान प्रयास जैविक तंत्र और आनुवंशिक घटक जो कि देशी पशुओं को विदेशी पशुओं की तुलना में तापीय सहिष्णुता का मुकाबला करने में मदद करती हैं, उसे बेहतर रूप से समझने में सहायता करेंगे।

इसके अतिरिक्त ब्यूरो में पशुओं और पोल्ट्री की अधिकांश नस्लों का माइक्रोसेटेलाइट और माईट्रोकोंडरिया के द्वारा अध्धयन किया जा चुका हैं। जिसमें हमें इन नस्लों में उपस्थित जीन के आनुवंशिकी लक्षणों और पशुधन की आनुवंशिक सरंचना को समझने में मदद मिली है।

जैव विविधता और मानव गतिविधियाँ

जैव विविधता की क्षति सबसे अहम संकटों में से एक हैं। नष्ट हुई प्रजातियों की जाँच एवं जीन समुच्च्य का लुप्त होना एक मुख्य चुनौती है। आज का मनुष्य जो जैविक पदानुक्रम का शिखर है, जैव विविधता की क्षति का मुख्य दोषी है। इस क्षति को अधिक उत्पादन देने वाली विदेशी नस्लों के उपयोग ने तेजी से बढ़ाया है। यही कारण है कि आज हमारी जैव विविधता खतरे में है। प्रजातियों के विलुप्त होने के लिए जिम्मेदार मुख्य कारकों में से कुछ निम्नलिखित हैं:

1. **जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण, पर्यावास हानि और विखंडन:** बढ़ रही मानव आबादी का पर्यावरण और जैव विविधता पर एक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हैं। दुनिया की आबादी हर साल 8.7 करोड़ की दर से बढ़ रही हैं। जिसमें 8 करोड़ से अधिक व्यक्ति लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के विकासशील देशों से जुड़ रहे हैं। भारत में हर मिनट में 31 नए बच्चे जन्म ले रहे हैं और इस तरह हम अपनी आबादी में प्रतिदिन 45,000 व्यक्ति जोड़ रहे हैं, नतीजतन, हर साल हम 1.6 करोड़ अतिरिक्त व्यक्तियों का भोजन खर्च वहन करते हैं। आज भारत की अनुमानित जनसंख्या तकरीबन 125 करोड़ है। जनसंख्या के इस उछाल से गांवों, कस्बों और शहरों के लिए अधिक स्थान और कृषि उपज, कारखानों और अन्य बुनियादी सुविधाओं के विकास के लिए अधिक भूमि की जरुरत बढ़ी है। परिणामस्वरूप पशु, पक्षी व् जीवन के अन्य रूपों के निवास समाप्त हो गए हैं तथा पौधो एवं जंतुओं की कई प्रजातियाँ नष्ट हो गयी हैं। फलस्वरूप जैव विविधता में तेजी से कमी आयी है।

   आवास का नष्ट होना जैव विविधता की क्षति का प्रमुख कारण है जिसमें परिणाम स्वरुप कई प्रजातियों की आबादी में कमी आ जाती हैं या फिर वह विलुप्त हो जाती हैं।

2. **विदेशी प्रजाति को प्राथमिकता:** एक भौगोलिक क्षेत्र में प्रवेश करने वाली नई प्रजाति को विदेशी या गैर प्रजाति कहा जाता है। इस तरह की विदेशी प्रजातियों को सम्मिलित करने से जैविक व्यवहार में परिवर्तन देशी प्रजातियों के विलुप्त होने का कारण हो सकता हैं। डेयरी पशुओं के मामले में उच्च दुग्ध उत्पादन के कारण विदेशी जर्मप्लाज्म के प्रयोग के कारण, कई पारंपरिक रूप से अद्वितीय अनुकूलन और प्रतिरोधक लक्षणों वाली नस्लों की आबादी में भारी गिरावट के साथ आनुवंशिक क्षति हुई है। आवास के नष्ट होने में विदेशी प्रजातियाँ दूसरा प्रमुख कारण है। विदेशी और सिर्फ कुछ उच्च उत्पादन करने वाली नस्लों पर ध्यान व उनके अत्यधिक दोहन के परिणाम स्वरूप देशी नस्लें विलुप्त होने के कगार पर हैं।

3. **जलवायु परिवर्तन और पशुधन जैव विविधता:** वैश्विक जलवायु परिवर्तन आज के मुख्य पर्यावरणीय खतरों में से एक हैं। औद्योगिक क्रांति के बाद ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ने के कारण पृथ्वी की औसत सतह के तापमान में प्रति सदी 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई हैं। हैं। जलवायु परिवर्तन और इसके प्रतिकूल प्रभावों जैसे ग्लेशियरों का पिघलना, समुद्री जल स्तर का बढ़ना, तापमान वृद्धि, तूफान और अन्य मौसम की घटनाओं ने मनुष्यों, पशुओं, पौधों और सूक्ष्मजीवों सहित पारिस्थितिकी तंत्र को हानि पहुँचाई है। जिसके कारण कई प्रजातियों को अपने अस्तित्व लिए के कठिन संघर्ष करना पड़ रहा है। भूमि क्षरण का बढ़ना, पौधे और पशु आनुवंशिक संसाधनों में कमी, पशुधन के कारण पर्यावरण प्रदूषण, पानी की कमी और उभरते संक्रामक रोगों के खतरों ने श्रेष्ठ पशु उत्पादन और खाद्य सुरक्षा के लिए कई नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। इसके अतिरिक्त इस जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में मनुष्य कई संक्रामक रोगों, गर्मी से संबंधित मौतों, और वायु प्रदूषण के प्रसार में

वृद्धि से भी पीड़ित हो सकता है। अब यह व्यापक रूप से मान्य है कि जैव विविधता और जलवायु परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र कार्यप्रणाली के माध्यम से भी एक दुसरे से जुड़े रहते हैं। मिलेनियम पारिस्थितिकी तंत्र आकलन ने जलवायु परिवर्तन को भविष्य की जैव विविधता की क्षति में एक प्रमुख कारक बताया है और यह संकेत दिया है कि ऐसा होना विकास की प्रमुख चुनौतियों जैसे शुद्ध जल, ऊर्जा सेवाएं, और भोजन के प्रावधान सहित एक स्वस्थ वातावरण के रखरखाव, और पारिस्थितिकी के संरक्षण प्रणालियों, उनकी जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र से सम्बंधित दूसरी सेवाओं को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा। लगातार बढ़ते तापमान से, पशुओं में गर्मी से तनाव, फसल की अस्थिर पैदावार, कीट और रोगों के फैलने का प्रकोप लगातार बढ़ेगा। यह उम्मीद हैं कि जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव कृषि उत्पादकता पर और परोक्ष रूप से भोजन और चारे की उपलब्धता पर भी पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन के कारण सन् 1400 से लेकर अब तक 875 प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं। हालाँकि, यह संख्या केवल दस्तावेजों में विलुप्त होने की जानकारी देती हैं। जबकि वास्तव में यह आंकड़ा 1,40,000 की विलुप्ति का माना जा रहा हैं। जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ कृषि के आधुनिक तरीकों और परिवहन की प्रणालियों ने भी पर्यावरण और जैव विविधता को काफी क्षति पहुंचाई हैं।

यह कहना अनुचित न होगा कि मानव गतिविधियों ने वैश्विक स्तर पर जैव विविधता को खतरे में डाल दिया हैं। पौधे या पशु प्रजातियाँ तब संकट ग्रस्त होती हैं जब स्वयं को बदलते पर्यावरण में ढाल नहीं सकती और उनकी संख्या कम होती जाती है और वे विलुप्ति के कगार पर पहुंच जाती हैं। आज लगभग 1500 पौधे और 300 पशु प्रजातियाँ विलोपन संकट में हैं और सैकड़ों विलुप्त हो रही हैं। उदाहरण के लिए गेंडा, बाघ, घड़ियाल, कस्तूरी मृग और भालू हमारे देश की कुछ लुप्तप्राय प्रजातियों में से हैं।

75 लाख से अधिक साल पहले विशाल डायनासोर पृथ्वी पर घूमा करते थे लेकिन क्योंकि वे बदलते परिवेश और परिस्थितियों के साथ खुद को बदल नहीं सके इसलिए वे जल्द ही विलुप्त हो गए। मम्मोथ, कुंद और अन्य प्रजातियों का भी अंत ऐसे ही हुआ।

प्राकृतिक चयन और जैविक विकास की इस प्रक्रिया में कुछ प्रजातियाँ जो खुद को पर्यावरण में ढाल नहीं पाई वो नष्ट हो गई लेकिन परिणाम स्वरूप विविधीकरण प्रबल हुआ और पौधे और जानवरों की प्रजातियों की संख्या में वृद्धि लगातार बढ़ने लगी। यह मोटे तौर पर अनुमानित किया गया है कि वर्ष 1600 के बाद से 1980 के दशक तक लगभग 115 स्तनपायी और 171 पक्षियों के अलावा सरीसृप, उभयचरों और मछलियों की अनगिनत प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं और कुछ विलुप्त होने की कगार पर हैं। यह तो केवल एक अनुमान हैं, असल में नुकसान अधिक होता यदि इसमें सैकड़ों बेनाम और अज्ञात प्रजातियों का विलुप्त होना भी शामिल होता है। यह माना जाता हैं कि अब हर दिन लगभग 50 प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं और बढ़ते प्रदूषण और घटती हरियाली के साथ इसकी वृद्धि होने की संभावना हैं। 50 से 59 प्रतिशत प्रजातियाँ उष्णकटिबंधीय जंगलों में रहती हैं और वैश्विक जलवायु परिवर्तन के इस युग में यह क्षेत्र अब सबसे लुप्तप्राय पारिस्थितिक तंत्र बन गए हैं।

यदि जैव विविधता के विनाश की वर्तमान प्रवृत्ति निरंतर जारी रही तो यह आशंका जताई जा रही है कि अगले 45–50 वर्षों के भीतर विश्व की कुल प्रजातियों का एक चौथाई हिस्सा विलुप्त हो जायेगा। उष्णकटिबंधीय समुद्री और सदाबहार क्षेत्रों में से कुछ जैसे भारत और बांग्लादेश के सुंदरबन, तंजानिया और केन्या में झीले और नदियाँ, नाइजीरिया में नाइजर डेल्टा, थाईलैंड की खाड़ी, पाकिस्तान में सिंधु नदी का डेल्टा और मलेशिया, फिलीपींस, इंडोनेशिया, क्वींसलैंड (ऑस्ट्रेलिया), अमेरिका (टेक्सास से फ्लोरिडा के दक्षिण तट), पनामा, इक्वाडोर और कैरेबियन के कुछ क्षेत्र एक बड़े संकट में हैं। जैव

विविधता में कमी का प्रभाव गंभीर और दीर्घकालिक हैं क्योंकि इससे हुए नुकसान अपरिवर्तनीय हैं।

जैव विविधता की विशेषता और संरक्षण

किसी किस्म/नस्ल या आबादी के विलुप्त होने का मतलब है कि उनमें उपस्थित अनूठी जीन या जीन संयोजन का नुकसान होना, जो कि जीनोटाइप और पर्यावरण के बीच के जटिल संबंधों के परिणाम स्वरूप बनते हैं तथा विशेष अनुकूली और रोग प्रतिरोध विशेषताओं के लिए जिम्मेदार होते हैं। ये स्थानीय किस्में/ नस्लें, कम या शून्य निवेश उत्पादन प्रणाली के तहत खाद्य सुरक्षा को पूरा करने के लिए और भविष्य में भोजन की मात्रा और गुणवत्ता की मांग में प्रत्याशित परिवर्तन के साथ –साथ आनुवंशिक विविधता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये भी महत्वपूर्ण हैं। इसलिए, स्थानीय रूप से अनुकूलित वनस्पति, जीवों के उपयोग और उचित मानवीय हस्तक्षेप के विकास द्वारा कृषि विशेषज्ञों तथा परिसंपत्तियों को सुरक्षित रखने में मदद ली जा सकती हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, स्वदेशी आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण का महत्व सर्वोपरि हैं। जैव विविधता के संरक्षण के लिए सबसे पहला और मुख्य कदम है, इसे चिह्नित करना। प्रणालीगत रूप से प्रजातियों की पहचान और चिह्नित करने का काम पिछली दो शताब्दियों से प्रगति पर है। लेकिन जो प्रजातियों अभी तक एकत्रित, वर्णित और नामित की गयी हैं उनकी संख्या, वास्तविक उपलब्ध संख्या से बहुत कम हैं। पृथ्वी पर सभी ज्ञात और वर्णित जीवों की संख्या 1.7 से 1.8 मिलियन के बीच हैं जो वास्तविक संख्या के 15 प्रतिशत से भी कम हैं। कुल प्रजातियों की अनुमानित संख्या 5 से 50 लाख के बीच हैं तथा औसतन 14 लाख हैं। अभी तक विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, बहुत सी प्रजातियां को वर्णित नहीं किया गया है। हर प्रजाति, बैक्टीरिया से लेकर उच्च पौधों और जानवरों तक, आनुवंशिक जानकारी का एक विशाल भंडार हैं। उदाहरण के लिए, माइक्रोप्लाज्मा में जीन की संख्या लगभग 450–700, धान्य में 50000–32000, पशुओं में 22000, ई. कोलाई में 4000, ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर में 13000 और मानव में 35000–45000 हैं। आनुवंशिक विविधता एक आबादी को अपने पर्यावरण के लिए अनुकूल और प्राकृतिक चयन को प्रतिक्रिया देने के लिए सक्षम बनाती हैं, इस लिये इनका संरक्षण आवश्यक हैं। अतः अधिक आनुवंशिक विविधता से भरपूर प्रजाति, बदलते हुए पर्यावरण की स्थिति में आसानी से अनुकूलित हो सकती हैं। आनुवंशिक संसाधन विविधता का संरक्षण इसलिये भी आवश्यक हैं क्योंकि ये किसान, चरवाहे और प्रजनकों को उनके पालतू पशुओं को जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ उपभोक्ताओं की बढती जैविक उत्पादों की मांग का सामना करने के लिए भी सक्षम बनाती हैं। हालांकि प्रजातियों का एक बड़ा हिस्सा, बदलती जलवायु के लिए अनुक्रियाशील हैं, परन्तु कुछ नस्लें अभी भी चरम जलवायु और कम निवेश की स्थिति में भी अच्छे उत्पादन में सक्षम हैं।

विचारणीय तथ्य

जैव–विविधता पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जैव विविधता का विनाश परिस्थितिकी के विलुप्त होने, प्राकृतिक आपदाओं तथा धीरे धीरे मृत्यु की और जाने के लिये एक खुला निमंत्रण है। आज पर्यावरण भीषण खतरे में हैं। इससे मानव जीवन और जैव विविधता भी खतरे में हैं। विकास के दौरान आवश्यक जैव–मंडल को भारी नुकसान हुआ है। जैव मंडल में इस असंतुलन के कारण न केवल जीवन की शैली क्षति ग्रस्त हुई है, बल्कि जैव विविधता और उसमें रहने वाले जीवों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। जैव मंडल और जीवन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर एक को नष्ट कर दिया जाता है तो दूसरा भी स्वचालित रूप से नष्ट और बर्बाद हो जाता है। मानव समाज के लिए आवश्यक सेवाओं की रक्षा के लिए पारिस्थितिक तंत्र की बहाली आवश्यक है।

कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियाँ और संगठन हैं जो प्राकृतिक और जैविक संसाधनों के संरक्षण में लगे

हुए हैं। और उन्होंने कई योजनाएं और कार्यक्रम तैयार किये हैं। हालांकि, केवल कार्यक्रम, संधियों, सम्मेलनों और प्रोटोकॉल और उनकी पुष्टि ही पर्याप्त नहीं हैं। बल्कि जैव विविधता का संरक्षण और परिरक्षण आम लोगों के समर्थन, राजनीतिक इच्छाशक्ति, जागरूकता, प्रतिबद्धता और व्यावहारिक और परिणाम उन्मुख कदम पर भी निर्भर करता हैं। जैव विविधता को खतरा, स्थानीय और विश्वस्तर दोनों पर ही हर किसी के लिए चिंता का विषय होना चाहिए।

सरकार के निरंतर हस्तक्षेप के द्वारा ही जैव विविधता की क्षति को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सरकार के कार्यक्रम, संरक्षित क्षेत्रों के विस्तार और उनको मजबूत बनाने के साथ ही संकटग्रस्त प्रजातियों तथा उनके निवास पर केन्द्रित हैं। भारत सरकार ने संरक्षित वन्य जीवन और वनों की रक्षा और संरक्षण के लिए लगभग 80 राष्ट्रीय पार्क और 441 अभयारण्यों का निर्माण किया हैं। यह भारत के वन क्षेत्र का 19% और उसकी कुल भूमि का 4.3% हैं। लेकिन फिर भी अभी तक वन्य जीवन सुरक्षित नहीं हैं। आज भी पशु, पक्षी, सरीसृप, कीड़े, झाड़ियाँ, जड़ी बूटियाँ, पेड़–पौधे हर दिन विलुप्त होते जा रहे हैं। सरकार की नीतियाँ तो केवल सहायक होती हैं। परन्तु ऐसी स्थिति से उबरने के लिये प्रत्येक नागरिक का योगदान भी आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति को हमारे प्राकृतिक जैविक संसाधनों की रक्षा व सुरक्षा के प्रति जागरूक होना होगा क्योंकि जैव–विविधता के संरक्षण के द्वारा हम अपने आप को भी सुरक्षित करते हैं। जैव–विविधता मानव जाति की भी जीवन रेखा है। इसलिए वन, मिट्टी, पानी और जैव विविधता का संरक्षण अति आवश्यक है।

आज जैव विविधता की निरंतरता को बनाये रखना अति आवश्यक है क्योंकि अब तक जो कुछ दशकों में जो नष्ट हुआ है उसे बहाल करने के लिए सैकड़ों हजारों वर्ष लगेंगे। इसलिए, समय की मांग है कि मानव व जैव–विविधता के बीच एक परिपक्व एवम् स्थिर सामंजस्य बनाना होगा जिसके लिये लोगो को शिक्षित करना होगा ताकि वो जैव विविधता के मूल्यों को समझ सके। पोषक तत्व प्रदूषण को रोकने के लिये व विदेशी जर्मप्लाजम के अनावश्यक प्रयोग से बचने के लिये मत्स्य पालन, जंगलों और कृषि में अधिक स्थायी तरीकों को शामिल कर जैविक संसाधनों पर पढ़ रहे सीधे प्रभाव को काम करने के प्रयास में व्यक्तिगत रुचि लेनी होगी।

भारतीय अर्थव्यवस्था में बकरी का योगदान : उत्पाद व उपोत्पाद

चेतना गंगवार[1], एस पी सिंह[2], महेश डिगे[3] एवं अनुज कुमार सिंह सिकरवार

[1,3] भाकृअनुप–केन्द्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, फरह मथुरा (उ.प्र.)

[2] वेटनरी कालेज दुदुवास, मथुरा (उ.प्र.)

बकरी संभवतः प्रथम रोमन्थी पशु थी जिसका प्रागैतिहासिक काल से ही मानव जाति ने पालन–पोषण किया है। बकरियों के पालतूकरण का प्रथम प्रमाण फारस की वेल्ट गुफा और जेरिको के मिट्टी के बर्तनों पर मिलता है। प्रागैतिहासिक काल से ही बकरियों का पालन मॉस व दूध दोनों के लिए बलूचिस्तान, पंजाब व तुर्किस्तान में हुआ, जिसको हम कैपरा फाल्कोनेरी नाम से भी जानते है। दूसरी प्रजाति वेजोर या कैपरा इगाग्रस सिन्ध, फारस व एशिया में पायी जाती है। वर्तमान समय में पालतू बकरी को कैपरा हिरकस (लिनयस) नाम से जाना जाता है। इसके पूर्वज कैपरा इगाग्रस व कैपरा फाल्कोनेरी की वशंज है। अंगोरा बकरी कैपरा इगाग्रस व कैपरा फाल्कोनेरी की संकर नस्ल है।

बकरी एक बहुमुखी एवं बहुउद्देशीय पशु है। यह भारत में "गरीब आदमी की गाय" व यूरोप में "शिशुओं की नर्स" के रूप में जानी जाती है। बदलते वातावरण, बढ़ती हुए जनसंख्या व घटते हुए संसाधनों को देखते हुए बकरी भविष्य के पशु के रूप में ग्रामीण अंचल में उपयुक्त साबित हो सकती है। गाय – भैंस की बढ़ती हुई कीमत की तुलना में बकरी की कीमत अत्यधिक कम है। भविष्य में बकरी पालन ग्रामीण अंचलो में रोजगार का अच्छा विकल्प हो सकता है।

चित्र 1. बकरी पालन

विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन (2007) के अनुसार विश्व में बकरियों की संख्या 85.02 करोड़ है जिसमें से लगभग 12.54 करोड़ बकरीयॉ भारतवर्ष में पायी जाती हैं जो कि विश्व का लगभग 14.76 प्रतिशत है। भारत वर्ष में बकरी पालन गरीब किसानों के लिए अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक लाभदायक हैं क्योंकि इसके पालन के लिए बहुत अधिक धन, श्रम व संसाधन की आवश्यकता नहीं होती है। ग्रामीण व भूमिहीन किसान बकरी पालन करके अतिरिक्त आमदनी कर सकता है। बकरियां चारे के अलावा जंगली झाड़ियाँ, पत्तियाँ इत्यादि बड़े चाव से खाती हैं, तथा ये तापमान की विषम परिस्थितियों में भी अपने –आप को ढाल लेती हैं।

देश में बकरीयों को दूध व मांस उत्पादन के लिए उपयोग में लाया जाता है। बकरियों में रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होने के कारण भी ये अधिक उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। बकरियॉ देश की अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित तरीके से योगदान कर सकती है।

1. दुग्ध उत्पादन एवं इसके द्वारा बनाए जाने वाले व्यंजन से।
2. बकरे से मॉस उत्पादन व इनके द्वारा बनाए जाने वाले व्यंजन से।
3. बकरियों से बाल व फाइबर (ऊन) प्राप्त करना।
4. चमड़ा उत्पादन व उनके शरीर के अन्य अंगो का उपयोग करके।
5. खाद व अन्य वस्तुएं प्राप्त होना।

बकरी का दूध : मानव पोषण में इसका योगदान अद्धितीय है। यह मन को प्रसन्न रखता है। बकरी का दूध फेफड़े के घावों व गले की पीड़ा को दूर करता है, यह पेट को

शीतलता प्रदान करता है। दूध एक सम्पूर्ण आहार है तथा मानव में ऐसी बीमारियॉ जिसमें खून में प्लेटलेट्स की संख्या घट जाती है, के लिए बकरी का दूध रामबाण होता है। बकरी का दूध डेंगू के मरीजों के लिए प्राकृतिक उपचार है, इसमें खनिज पदार्थों जैसे आयरन, कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्नीशियम पाये जाते है एवं यह प्लाज्मा कोलेस्ट्रोल का संतुलन बनाये रखता है। बकरियों के दूध में सिलिनियम अधिक मात्रा में पाया जाता है, जो कि खून का थक्का बनने की क्रिया को भी नियंत्रित करता है। यह एन्टी–ऑक्सीडेन्ट की तरह भी कार्य करता है व टी– कोशिका व इंटरलुकिन की वृद्धि भी प्रभावित करता है। देश में कुल दूध का 3.7 प्रतिशत दूध का उत्पादन बकरियों से होता है (वी.ए.एच.एस.–2012)।

दूध की रायायनिक संरचना

बकरी के दूध में मुख्यतः वसा, प्रोटीन, लैक्टोज तथा खनिज लवण का अनुपात विभिन्न नस्लों में अलग–अलग होती है।

1. **वसा :** बकरी के दूध में वसा की मात्रा सामान्यतः भैंस व भेंड़ से कम पायी जाती है। वसा की मात्रा सामान्यतः 3.5–4.4 प्रतिशत पायी जाती है। बकरी के दूध में मध्यम चेन वाले फैटी ऐसिड अधिक पाये जाते है। वसा की मात्रा आनुवंशिकता, पर्यावरण व चारे पर निर्भर करती है। कपास की खली खिलाने से वसा की मात्रा बढ़ाई जा सकती हैं। मध्य चेन फैटी ऐसिड वसा अवशोषण सिंड्रोम से पीड़ित लोगों के लिए यह ऊर्जा का स्रोत है। बकरी के दूध के वसा का आकार गाय व भैंस के दूध से छोटा होता है। विभिन्न प्रजातियों में बकरी के दूध में छोटे वसा कणों की मात्रा गाय व भैंस के दूध से अधिक होती है, अतः जल्दी पच जाता है।

2. **प्रोटीन :** बकरी के दूध में प्रोटीन की मात्रा 2 से 6 प्रतिशत तक पायी जाती है। केसीन बकरी के दूध में पाया जाने वाला मुख्य प्रोटीन है। हाइपो ऐलरजिक होने के कारण बकरी का दूध, मानव दूध का विकल्प माना जा सकता है। वीटा – केसीन बकरी के दूध के केसीन का मुख्य घटक है, जिसके कारण ही बकरी के दूध से ऐलर्जी कम होती है तथा शारीरिक विकास में अधिक मदद मिलती है। लैक्टोफेरिन गाय के दूध के समान व ओराटिक अम्ल बकरी के दूध में कम पाया जाता है तथा राइबोन्यूक्लियोटाइड से भरपूर होता है यह कोशिका के नवीनीकरण व रोग के खिलाफ लड़ने में मदद करता है।

3. **विटामिन :** बकरी के दूध में मुख्यतः विटामिन बी काम्पलेक्स जो कि पानी में घुलनशील होता है पाया जाता है। बकरी के दूध में थियामिन, राइबोफ्लेबिन, नियासीन, पैन्टोथीनिक व बायोटीन क्रमशः 0.05, 0.14, 0.20, 0.31 व 2.06 मिग्रा./ली. होता है। बकरी के दूध में विटामिन 'ए' भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इस प्रकार बकरी के दूध में विटामिन की मात्रा गाय के दूध से अधिक होती है।

4. **खनिज लवण :** बकरी के दूध में पोटैशियम 1900 मि.ग्रा/ली. होता है जो कि गाय व भैंस के दूध से अधिक होता है। दूध में कैल्शियम की मात्रा का विशेष महत्व होता है जो कि बकरी के दूध में 1250 मि.ग्रा./ली. होता है जो कि उच्च रक्त चाप और ओस्टीयोपोरोसिस में राहत प्रदान करता है। बकरी के दूध में कैल्शियम व आयरन (550 मि. ग्रा./कि.ग्रा.) की उपलब्धता गाय के दूध से अधिक होती है। इन खनिज लवणों का कार्य हमारे शरीर की हड्डियों के निर्माण एवं उनको मजबूती प्रदान करना होता है।

5. **लैक्टोज :** बकरी के दूध मे लैक्टोज की मात्रा गाय या भैंस की दूध से अधिक होती है। जिन मनुष्यों को गाय के दूध से एलर्जी होती है उनके लिए बकरी का दूध लाभदायक होता है क्योंकि यह आसानी से

पच जाता है जो दिल व कैंसर के रोगियों के लिए लाभदायक होता है।

बकरी के दूध का पाचन मनुष्यों में अधिक आसानी से होता है तथा इसमें पाये जाने वाले घटक आसानी से उपलब्ध होते हैं। बकरी के दूध में केसीन प्रोटीन के कारण दही नरम बनता है। वसा के ग्लोब्यूल का आकार छोटा तथा एगलुटीनीन नहीं पाया जाता है तथा मध्यम व छोटे चेन के फैटी ऐसिड पाये जाते हैं, जिसके कारण बकरी का दूध गाय व भैंस के दूध से अधिक सुपाच्य होता है। साथ ही बकरी के दूध में औषधीय गुण अत्यधिक पाये जाते हैं क्योंकि बकरी जंगल मे चरने के दौरान विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों की पत्तियों आदि का सेवन करती है जिसके वजह से अधिक औषधीय गुण आ जाते है।

बकरी के दूध से बनाये जाने वाले व्यंजन

पनीर, चीज, योगहर्ट, घी, खोआ, श्रीखण्ड, छेना, सन्देश, रसगुल्ला, दही, आईसक्रीम व दूध पाउडर इत्यादि दूध से बनाये जा सकते हैं। बकरी का दूध बच्चों को पिलाने के लिहाज से बहुत उपयोगी होता है।

चित्र 2. बकरी के दूध से तैयार उत्पाद

बकरी के मांस का उपयोग

बकरी का मांस उपभोक्ताओं के बीच प्रथम वरीयता में है क्योंकि अन्य पशुओं की तरह बकरियों के मांस के साथ कोई धार्मिक मान्यता नहीं जुड़ी है। अधिक मांग तथा कम उत्पादन के कारण बकरी का मांस महंगा मिलता है। इसके मांस को चिवान कहते हैं और यह बहुत ही पुष्टिकर होता है। इसमें प्रोटीन 19–21 प्रतिशत, वसा 3–6.5 प्रतिशत तथा राख 1.0 प्रतिशत होती है। प्रोटीन की मात्रा भैंस, भेड़ व सुअर के मॉस से अधिक होती है।

चित्र 3. बकरी के मांस से तैयार उत्पाद

चिवान में वसा की मात्रा 3–6 प्रतिशत व फास्फोरस 10.65 मि.ग्रा./ग्राम व अच्छे वसा की मात्रा लगभग 70 प्रतिशत तक पायी जाती है जो कि हृदय व मोटे लोगों के लिए लाभदायक होता है। कोलेस्ट्राल की मात्रा भी अन्य की अपेक्षा कम पायी जाती है, जो कि स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। बधिया बकरे के मांस में वसा की मात्रा अधिक होती है। मांस की गुणवत्ता आयु पर निर्भर करती है। संयोजी ऊतक कम होने की वजह से कम आयु के जानवरों का मांस – नरम होता है, जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है मांस सख्त होता जाता है क्योंकि संयोजी ऊतक की मात्रा बढ़ जाती है।

चिवान से वे सभी उत्पाद बनाये जा सकते है जो कि सुअर, भैंस, मुर्गी, भेड़ के मांस से बनते है। प्राकृतिक रूप से कम सुगन्धित होने के कारण विभिन्न प्रकार के उत्पादों को मिलाकर स्वादिष्ट उत्पाद बना सकते हैं जैसे कि बकरी के मांस की बरी, अचार, सोसेज, नगेट्स, कोफ्ता, समोसा, टिक्की, सर्व मॉस करी और चेट्टीनाड बकरी मांस करी इत्यादि।

बकरी के वध से प्राप्त उत्पादों का प्रयोग

बकरी पालन से करोड़ों की आमदनी होती है, पशु ग्रंथियों से प्राप्त जीवनदायी औषधियों की विभिन्न किस्में बनाई जा रही है। हारमोन्स को रासायनिक संश्लेषण से तैयार नहीं किया जा सकता है, अतः बकरियों से आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। बूचड़खानों से बकरियों के विभिन्न अंगो, उपोत्पाद को इकट्ठा करके निम्नलिखित औषधियां प्राप्त की जा सकती है:

उपोत्पादों से प्राप्त औषधियाँ और जैव रसायन

रक्त –	प्लाज्मा, सीरम, एल्ब्यूमिन, रक्तचूर्ण, हीमेटोनिक
फिब्रीन –	पेन्टीन, फिब्रीनक्रोम, फिब्रीन चूर्ण
अग्नाशय –	इंसुलिन, ग्लूकेगोन, ट्रिपसिन, काइनोट्रिपसिन
फेफड़ा और आंत –	हिपेरिन
यकृत –	यकृत निष्कर्ष
थायराइड –	थाइराक्सिन
पिट्यूटरी –	एफ.एस.एच., प्रोलैक्टिन, आक्सीटोसिन, वैसोप्रैसिन
वृक्क –	ऐड्रिनेलीन
अण्डकोष –	हाइलूरोनिडेज
पित्ताशय –	पित्त व पित्त लवण
रीढ़ रज्जू –	कोलेस्ट्राल, लेसीथिन
हड्डियां –	जिलेटीन, अस्थि संरचना, विकास प्रोटीन।

ऊन की प्राप्ति : बकरियों की विभिन्न प्रजातियों जैसे पश्मीना, चेगू, चंगथान्गी जो कि पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है से अच्छी प्रकार की ऊन प्राप्त की जा सकती है। पश्मीना बकरी से सर्वोत्तम प्रकार की ऊन प्राप्त की जाती है, और यह बहुत ही गर्म व बहुमूल्य होता है। कई बकरियों की प्रजातियों में बड़े–बड़े बाल पाये जाते हैं, उनके बालों का उपयोग कालीन, चटाई व दरी बनाने में किया जाता है।

चमड़ा उत्पादन एवं अन्य शरीर अंगो का उपयोग : बकरियों से चमड़ा, हड्डियाँ, सींग तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति होती है जिससे सिद्ध होता है कि बकरी पालन न केवल जीते जी बल्कि मरने के बाद भी मनुष्यों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

- हड्डियों का चूरा बनाकर पशु दाने में डालने से पशु आहार संतुलित होता है, और कैल्शियम एवं फॉस्फोरस की कमी नहीं हो पाती है।
- सींगों से बटन, कंघी, वाद्य यंत्रो के मूंढ़ इत्यादि बनाए जा सकते हैं।
- बकरी के चमड़े का उपयोग ढोलक, तबला, ढपली, पर्स, जैकेट व बेल्ट इत्यादि बनाने में होता है।

खाद की प्राप्ति : बकरी के गोबर को लेड़ी कहते है जो कि खाद के रूप में अधिक उपयोगी होती है। इस तरह बकरियां चरते समय बंजर भूमि को भी वहां पर लेड़ी करके उपजाऊ बना सकती हैं।

सारांश में, बकरी को भविष्य का पशु कहा जा सकता है क्योंकि इसका दूध अत्यधिक फायदेमंद होता है साथ ही मॉस उत्पादन में कोई धार्मिक समस्या सामने नहीं आती है। कम लागत से अधिक उत्पादन की संभावना बनी रहती है। बकरी पालन से विश्व के हर व्यक्ति को कम लागत में दूध व मांस को पहुँचाया जा सकता है एवं विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जा सकती है। बकरी, भविष्य में न केवल भारत में बल्कि विश्व में पशुपालन उद्योग की एक महत्वपूर्ण कड़ी बन जाएगी जिसके लिए बकरी के अनुसंधान कार्यों में तेजी लाने की आवश्यकता है।

अश्व जीनोम: एक अवलोकन

अनुराधा भारद्वाज, यशपाल एवं अशोक कुमार गुप्ता
भाकृअनुप–राष्ट्रीय अश्व अनुसंधान केन्द्र हिसार (हरियाणा) –125001

दीर्घकाल से अश्वों का चयन तथा पालन उनकी उत्तम नस्ल, सुंदरता एवं शक्ति के आधार पर किया जाता रहा है। पीढ़ी दर पीढ़ी शुद्ध नस्ल के अश्वों का प्रजनन, उत्पादन एवं पालन वैज्ञानिकों एवं अश्व–पालकों की प्रथम आवश्यकता/रूचि रही है। अश्वों के बाह्य रूप, शक्ति एवं दूसरे गुणों/विशेषताओं का सीधा सम्बंध उनके जीनोम से है। इसी तरह से अश्वों में होने वाली कई बीमारियों का भी सीधा संबंध उनके जीनोम से है।

किसी भी पशु, पौधे एवं प्राणी का संपूर्ण जीन संग्रह (डी.एन.ए.) जीनोम कहलाता है। जीन, अनुवांशिकता की मूलभूत ईकाई है तथा प्रत्येक जीन में प्रोटीन के निर्माण के लिए कोड–बद्ध निर्देश होते हैं। विभिन्न तरह के प्रोटीन ही किसी व्यक्ति अथवा प्राणी के विशेष गुणों, जैसे त्वचा का रंग, ऊचांई आदि का निर्धारण करते हैं। जीव का सम्बंध अनुवांशिक गुणों तथा अनुवांशिक बीमारियों के साथ भी होता है। जीनोम अनुक्रमण द्वारा पशु/प्राणी के गुणों एवं बीमारियों की पहचान करना सम्भव है तथा ऐसी ही सम्भावनाओं के कारण जैव–प्रौद्योगिकी का महत्व बढ़ता ही जा रहा है। डी.एन.ए. के बेस युग्मा/बेस पेयर जैसे ऐडेनिन (ए), थायमीन (टी.), साइटोसिन (सी) एवं ग्वानीन (जी) के क्रम का निर्धारण जीनोम अनुक्रमण यानी सीक्वेंसिग कहलाता है।

वैश्विक जीनोम क्रांति एवं जैव–प्रौद्योगिकी की अति आधुनिक तकनीकों के कारण ही मानव एवं अन्य कई पशुओं के जीनोम का अनुकम्रण एवं विकोडन संभव हो पाया है। जीनोम अनुकम्रण करने के लिए उच्च स्तर की गणन क्षमता और अत्याधुनिक मशीनों पर कार्य करने तथा बड़ी मात्रा में आकड़ों के विश्लेषण का प्रौद्योगिकी ज्ञान आवश्यक है। डी–आक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल (डी.एन.ए.), न्यूक्लिओटाइड का संग्रह है, जिसमें दो लड़िया एक–दूसरे की विपरीत दिशा में बंधी होती है। इनका ढांचा शर्कराओं और फॉस्फेट समूहों से बना होता है। न्यूक्लिओटाइड बेस–एडेनिन (ए), ग्वानीन (जी), साइटोसिन (सी) और थायमीन (टी) है तथा डी.एन.ए. अणु की लड़ी में इन चारों बेसों के अनुक्रम में ही आनुवांशिक कोड निहित होता है। ए केवल टी से और जी केवल सी से जुड़ता है।

अनुवांशिक सामग्री की विविधता ही एक प्राणी को दूसरे से भिन्न बनाती है। अनुवांशिक विविधता कई स्तरों पर होती है जैसे कि एक अतिरिक्त क्रोमोसोम का होना या फिर कोई क्रोमोसोम कम होना। सामान्यतः अनुवांशिक सामग्री की संरचना में बहुत ही बारीक अंतर होते हैं तथाा जीवन का रहस्य इन्ही विविधताओं में निहित है। एकल न्यूक्लिओटाइड के स्तर पर मौजूद अंतरो को एकल न्यूक्लिओटाइड बहुरूपता (एस.एन.पी.; सिंगल न्यूक्लिओराइड पॉलीमोर्फिज्म) कहा जाता है। प्रतिलिपि संख्या विविधता (कॉपी नम्बर वेरिएशन) में एक ही जीन उनके प्रतियों में बहुगुणित होकर मौजूद रहता है। कुछ अन्य प्राणियों में डी.एन.ए. के कुछ हिस्सों का जुड़ जाना या विलोपन भी होता है। वैज्ञानिकों ने ऐसी कई अनुवांशिक विविधताएं पहचानी हैं जो किसी जीन के कार्य या उसकी प्रकृति को प्रभावित कर सकती हैं इन्हें जीन उत्परिवर्तन (जीन म्यूटेशन) भी कहा जाता है। कभी–कभी इनका सीधा प्रभाव समलक्षणीय (फीनोटिपिक) कारकों पर भी होता है। कई बार बेस युग्म में बहुत मामूली परिवर्तन के कारण भी किसी महत्वपूर्ण प्रोटीन में बहुत बड़ा परिवर्तन हो सकता है। इससे किसी बीमारी/रोग की संभावना भी बढ़ सकती है या फिर शरीर में कोई बदलाव नहीं होता। इसलिए किसी जीनोम में विविधताओं का ज्ञान केवल पर्याप्त नही है अपितु उन विविधताओं का शरीर पर

किस तरह का प्रभाव पड़ता है यह ज्ञात करना भी अति आवश्यक है।

प्रारंभ से ही अश्वों में होने वाली कई बीमारियां अश्व–पालकों एवं वैज्ञानिकों के लिए चिंता का विषय रही हैं। अश्व जीनोम परियोजना का वास्तविक उपयोग ऐसी जटिल बीमारियों के प्रति ज्ञान एवं उनकी रोकथाम के लिए उपचार उपलब्ध करवाने में होगा। अश्व जीनोम परियोजना द्वारा प्राप्त जानकारी का उपयोग कई तरह से महत्वपूर्ण डायग्नोस्टिक टेस्ट बनाने के लिए हो सकता है जो कि अश्वों की शुद्ध नस्लों से अनुवांशिक रोगों की रोकथाम या संभावित उपचार में सहायक सिद्ध हो सकता है।

अश्व जीनोम की विशेषताएं

अश्व जीनोम परियोजना एक सहकारी अंतर्राष्ट्रीय प्रयास है जिसमें करीब 20 देशों के 100 से ज्यादा वैज्ञानिकों ने अपना योगदान दिया है। जिन घोड़ों का जीनोम इस परियोजना के अर्न्तगत अनुक्रमित किया गया उनके नाम टविलाईट (मादा अश्व) और ब्रेवो (नर अश्व) हैं। इनके अलावा ओर प्रजातियों के घोड़ों के डी.एन.ए. पर भी अध्ययन किया गया है। सबसे पहले अक्टूबर 1995 में लगभग 70 वैज्ञानिकों की बैठक में अश्व जीनोम पर अध्ययन के लिए विचार किया गया। अश्व जीनोम परियोजना इसी बैठक का नतीजा थी। इस परियोजना का प्रारंभिक लक्ष्य अश्व के लिए एक अनुवांशिक नक्शा (मैप) बनाने तक ही सीमित था। अश्वों के 32 गुणसूत्र युग्मों का अध्ययन एवं प्रत्येक गुणसूत्र पर अनुवांशिक स्थलों की तुलना एवं मिलान, मानव जीनोम के साथ करने का विचार था। परन्तु बाद में इस परियोजना में बहुत विस्तार हुआ तथा घोड़े की बीमारियों एव रंग के अनुवांशिक कारकों के लिए भी अध्ययन किया गया। 1995 से 2007 के बीच सात वैज्ञानिक वर्कशॉप भी की गई तथा 2007 में सम्पूर्ण अश्व जीनोम संकलन किया जा सका।

अश्व जीनोम दूसरे स्तनधारी जीवों के जीनोम से काफी मिलता–जुलता है। इसका आकार करीब 2.7 गीगाबेस (जीबी) है जोकि मानव जीनोम से (2.9 जीबी) से थोड़ा सा ही कम है। इससे करीब 20,000 जीन प्रोटीन के लिए कोड करते हैं जिसमे से लगभग 17,000 जीन मानव, कुत्ते और चूहे से मिलते हैं। घोड़े का जीनोम मानव जीनोम के बहुत करीब है और लगभग 32 में से 17 घोड़े के क्रोमोसोम मानव के समकक्ष हैं। इस जानकारी के आधार पर यह कहना संभव है कि अश्वों का जीनोम कुत्ते और चूहे की तुलना में मानव जीनोम के ज्यादा करीब है। घोड़े का लगभग 46 प्रतिशत जीनोम रिपीटेड स्क्विंसिंग से बना हुआ है तथा उसमें जीन संरक्षण का समावेश बहुत ज्यादा है। उच्च स्तरीय जीन संरक्षण का ज्ञान अश्वों में जीनों की मात्रा एवं उनके क्रम का पता लगाने में अत्यधिक सहायक होगा। क्योंकि अश्वों का जीनोम मानव जीनोम के बहुत करीब है, इसलिए उसके ज्ञान से मानव जीनोम की जटिलताएं सुलझाने में भी बहुत मदद मिलेगी।

अश्व जीनोम परियोजना से लगभग 6.8 जीनोम का अनुक्रमण एवं विस्तार किया गया है और हर डी.एन.ए. अणु को लगभग 6.8 बार ज्ञात किया गया। कुछ भाग, अन्य भागों की तुलना में अनुक्रमण के लिए कठिन सिद्ध हुए, जैसे कि प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करने वाले जीन जो कि अत्यधिक बहुरूपी दोहरे जीन एवं अत्याधिक प्रतियों में बहुगुणित थे। 6.8 जीनोम के विस्तार का अर्थ है कि डोनॉर घोड़े के डी.एन.ए. के 80–85% भाग का अनुक्रमण करके उसे ज्ञात कर लिया गया है। यह बाकी दूसरे के स्तनधारी पशुओं की अपेक्षा बड़ी उपलब्धि है। जीनों का अनुक्रमण, संग्रह एवं विश्लेषण एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया है जिसके लिए उच्च स्तरीय संसाधनों एवं बहुत अधिक समय और तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। अश्व जीनोम में लगभग 2.68 बिलियन पेयर हैं जो कि लगभग 31 ऑटोसोम और सैक्स क्रोमोसोम पर मौजूद है। अभी भी बहुत सारे डाटा सिक्वेंस के विश्लेषण

की आवश्यकता है ताकि अश्वों के लगभग 20,000 जीनों का नामाकरण दूसरे जीवों की तरह ही किया जा सके।

अश्व जीनोम में लगभग 1/1500 बेस पेयर में बहुलता स्तर मापा गया। अश्वों में 90 से ज्यादा अनुवांशिक रोगों का पता चला है और यह मानव से मेल खाता है। इस जानकारी का उपयोग अश्वों के साथ–साथ मानव के रोग निदान के लिए भी किया जा सकता है और यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण खोज है। यह भी पता चला है कि घोड़ों में 53 प्रतिशत जीन क्रम मानव के जीन क्रम से मिलता है जबकि यह कुत्तों के केवल 20 प्रतिशत जीन क्रम से मेल खाता है। किसी भी जीनोम परियोजना का मूलतः उद्देश्य द्विगुणित जीनोम का अनुक्रमण एवं विकेडन कर उसमें निहित न्यूक्लिओटाइड बहुलता (न्यूक्लिओटाइड पॉलीमार्फिज्म), गैर एस.एन.पी और परिवर्तन का पता लगाना होता है ताकि जीनोम के अध्ययन से यह जाना जा सके कि जीन किसी प्राणी के जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। अश्वों के संदर्भ में भी वैज्ञानिकों ने सैकड़ों अनुवांशिक विविधताएं पहचानी हैं जो किसी जीन के कार्य को प्रभावित कर सकती हैं। हाल के अध्ययनों से पता चला है कि अश्वों में दौड़ने की क्षमता लगभग 30 प्रतिशत अनुवांशिक अध्ययन द्वारा निर्धारित की जा सकती है और जो जीन, रेसिंग प्रदर्शन को प्रभावित करते हैं उनका सम्बंध मांसपेशियों, श्वसन, हृदय कार्य गति आदि से भी होता है। मानव एथलेटिक प्रदर्शन के अनुवांशिक अध्ययनों के द्वारा लगभग 100 ऐसे जीनों का पता लगाया जा सका है जो दौड़ने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। वैज्ञानिक ऐसे ही जीनों का अध्ययन अश्वों में भी कर रहे हैं।

अश्व जीनोम परियोजना में अश्वों से सम्बंधित जीन विकृतियों जिनका अनुवांशिक रोगों से संबंध है, पर अनुसंधान केंद्रित किया गया है। उदाहरण के लिए HYPP, SCID, OLWFD, GBFO आदि। इस दिशा में अभी बहुत प्रयास करने बाकी हैं ताकि सभी पशुओं का जीनोम अनुक्रमण सर्वसुलभ हो सके और ऐसी चिकित्सा पद्धति विकसित हो सके जिसके जीनोम द्वारा उपलब्ध जानकारी का उपयोग रोगों की रोकथाम और उपचार प्रणालियों के विकास में किया जा सके।

इसके अलावा अश्व–पालक घोड़े के रंग से संबंधित जीनोम की जानकारी में भी विशेष रूचि रखते हैं तथा कुछ खास किस्म के घोड़े एवं उनकी त्वचा का रंग अश्व–उद्योग में विशेष तौर पर अधिक लोकप्रिय होते हैं। यदि ऐसे जीनों का अनुक्रमण कर उनका पता लगाया जा सके तो यह अश्व–उद्योग के लिए एक बड़ी उपलब्धि होगी। अश्वों के जीनोम अनुक्रमण का खास उपयोग सभी स्तनधारियों के लिए किया जा सकेगा क्योंकि यह ज्यादातर पशुओं एवं मानव जीनोम के समान हे। इसका प्रयोग रोग अनुसंधान एवं जेनेटिक टेस्ट बनाने के लिए भी किया जा सकेगा जिससे अश्वों एवं दूसरे स्तनधारी पशुओं के रोग–निदान को एक नई दिशा मिलेगी। मानव की अपेक्षा अश्वों में इन जीनोम का पता लगाना ज्यादा सरल एवं लाभकारी सिद्ध होगा। कुछ बीमारियां (जैसे कि एलर्जी एवं गठिया) मानव एवं अश्वों में लगभग समान जीनों से प्रभावति होती है। अतः इनका अध्ययन भविष्य में अति उपयोगी होगा।

अश्व जीनोमिक्सः संभावनाएं एवं चुनौतियां

निसंदेहः जीनोमिक्स विज्ञान अति अग्रसर है तथा परस्पर प्रोद्योगिकीय सहयोग बढ़ाने से विज्ञान की विभिन्न दिशाओं में अनुसंधान एवं उपयोग निरंतर बढ़ रहा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि विभिन्न जीनोमिक्स परियोजनाओं से नए युग का सूत्रपात होगा। इस नए युग में तेज एवं शीघ्र असर वाली, किफायती निजीकृत तथा रोगों का पूर्वानुमान करते हुए पहले से ही सक्रिय हो जाने वाली चिकित्सा प्रणाली अपनाई जाएगी परन्तु इसका एक पहलू यह भी है कि यथार्थ में यह कितना उपयोगी होगा यह भविष्य ही बताएगा एवं इस नए युग में नई नैतिक एवं सामाजिक चुनौतियां भी पैदा होंगी क्योंकि अनुवांशिक आकड़ों के जगजाहिर होने से अश्वों का चयन एवं पालन कुछ खास किस्म तक ही सीमित हो जाने की संभावना है जिससे की

पृथ्वी पर पाये जाने वाली विभिन्न प्रजातियों को भी कुछ हद तक नुकसान हो सकता है।

अश्व जीन प्रारूप (जीनोम) का विशेषत महत्व निम्नलिखित उपयोगों के लिए है:

1. अश्वों के रंग के आधार पर बेहतर चयन एवं पालन।
2. शुद्ध नस्ल के अश्वों की पहचान एवं उनका प्रजनन।
3. शक्ति के आधार पर घुड़–दौड़ के लिए अश्वों का चयन एवं पालन।
4. विभिन्न प्रकार के डायग्नोस्टिक्स, रोग–निदान एवं उपचार हेतु।
5. दूसरे पशुओं एवं मानवों के लिए अनुसंधान।
6. अश्वों में होने वाली बीमारियों की पहचान एवं रोकथाम के लिए।
7. बेहतर वैक्सीन बनाने के लिए।
8. अश्वों में होने वाले अनुवांशिक कैंसर की रोकथाम।
9. जीन–थैरेपी, विशेषतः घुड़–दौड़ के अश्वों के लिए जो कि चोट अथवा गठिये से प्रभावित हो।
10. अश्वों की मजबूत मांसपेशियों की जीनों पर अनुसंधान या फिर मांसपेशियों और हड्डियों से जुड़ी बीमारियों पर अध्ययन एवं अनुसंधान हेतु।
11. अश्वों की बेजोड़ क्षमता को प्रभावित करने वाली न्यूट्रीशिनल (भोजन संबंधी) जीनोमिक्स और फिजीओलोजीकल (शारीरिक) जोनोमिक्स का अध्ययन।
12. प्रजनन संबंधी रोग के इलाज हेतु।
13. अश्व जीन प्रारूप सांस्कृतिक जेनेटिक्स स्टडीस में भी सहायक सिद्ध होना।
14. दूसरे पशुओं से संबंधित बीमारियों की पहचान, उपचार एवं रोकथाम के लिए।
15. खास एवं उच्च किस्म के अश्वों के संरक्षण में।

कोशिका एक उपयोग अनेक

सविता देवी, रेखा शर्मा एवं सोनिका अहलावत
भाकृअनुप – राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल–132001

परिचय – स्टेम कोशिकाएं हमारे शरीर की ऐसी अपरिपक्व कोशिकाएं हैं जिनमें आत्मनवीकरण व किसी भी परिपक्व कोशिका को जन्म देने की क्षमता है। इनकी इसी क्षमता का प्रयोग प्रयोगशाला में विभिन्न कोशिकाएँ व अंग बनाने में किया गया है, जिससे इन्हें प्रत्यारोपण तथा अन्य किसी विधि द्वारा शरीर में पहुँचाकर विभिन्न जानलेवा बीमारियों के इलाज में प्रयुक्त किया जा सकता है।

इन कोशिकाओं का प्रयोग मस्तिष्क संबंधित व रीढ़ की बीमारियों, रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने, अंधेपन व अन्य नेत्र संबंधित रोगों तथा रक्त संबंधित बीमारियों के इलाज में प्रयोग किया जा सकता है।

पेट्री प्लेट में पैदा हुए न्यूरानों का इस्तेमाल

भ्रूण स्टेम कोशिकाओं से बनाए गए न्यूरानों को मस्तिष्क संबंधित बीमारियों जैसे मिर्गी, स्ट्रोक, पार्किंसंस, लाऊ, गेहरिग, एमायोट्रोपिक पार्श्व काठिन्य जैसे रोगों के इलाज में इस्तेमाल किया जा सकता है। क्योंकि ये भी शारीरिक न्यूरानों की तरह ही तांत्रिक आवेगों को प्राप्त तथा भेज सकते हैं तथा ये स्थापित तांत्रिक नेटवर्क की गतिविधि को विनियमित कर सकते हैं ।

एस्ट्रोसाईट का दिमागी बीमारियों में इस्तेमाल

एस्ट्रोसाईट मस्तिष्क में, आकार में स्टार जैसी कोशिकाएं हैं। इनके बिना न्यूरान्स ढ़ंग से कम नहीं कर पाते तथा विभिन्न दिमागी रोग पैदा हो जाते हैं। ये न्यूरान के अंगरक्षक की तरह काम करती हैं। ये न्यूरान के रक्त प्रवाह को विनियमित करने, अतिरिक्त न्यूरोट्रांसमीटर की सफाई तथा रक्त मस्तिष्क बाधा को नियंत्रित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ये दिमाग के प्रत्येक कार्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।

इन एस्ट्रोसाइट कोशिकाओं को दोनों व्यस्क व भ्रूण स्टेम कोशिकाओं से विशेष प्रोटीन की मदद से बनाया जाता है। इन प्रयोगशाला निर्मित कोशिकाओं को केन्द्रीय तंत्रिका प्रणाली से जुड़े विभिन्न रोगों तथा पागलपन के इलाज में प्रयोग में लाया जा सकता है।

पैदा की रीढ़ की हड्डी

माउस और मानव भ्रूण स्टेम कोशिकाओं से न्यूरोमीजोडेरमल प्रोजेनिटर कोशिकाएं जोकि कोशिकाओं का ऐसा समूह है जिससे भ्रूण के विकास के दौरान रीढ़ की हड्डी, कंकाल और मांसपेशियां बनती हैं, में बदला जा सकता है। फिर इन कोशिकाओं से प्रयोगशाला में रीढ़ की हड्डी की कोशिकाएं बनाई जा सकती हैं, जिनका इस्तेमाल मुख्य रूप से दो जगह होता है:

1. स्पाइनल मस्कुलर एट्रोपि एंव अन्य न्यूरो मस्कुलर बीमारियों के इलाज में।
2. भ्रूण में सामान्य विकास के अध्ययन में जो कि अत्यंत कठिन कार्य है।

रोग प्रतिरोधक अंग का निर्माण

माउस के भ्रूण से फाईब्रोब्लास्ट कोशिकाओं को लेकर व रिप्रोग्रामिंग तकनीक द्वारा तथा फॉक्स एन–1 प्रोटीन का स्टार बढ़ाकर थाईमस उपकला कोशिकाओं में परिवर्तित किया गया। इन कोशिकाओं को अन्य थाइमस कोशिकाओं के साथ मिलाकर जब माउस में प्रत्यारोपण किया गया तो इन कोशिकाओं द्वारा व्यसक थाइमस का निर्माण हुआ। ये कोशिकाएं टी–कोशिकाएं हैं जो हमारे शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता का मुख्य अंग है जो शरीर को मृत कोशिकाओं तथा संक्रमण के लिए स्कैन करती हैं तथा हानिकारक कोशिकाओं को बाहर निकाल देती हैं।

इस प्रकार जिन रोगियों की रोग प्रतिरोध क्षमता कमजोर होती है तथा जिनका थाइमस टी–कोशिकाएं बनाने में असक्षम है, उन लोगों के लिए लैब निर्मित थाइमस एक नई जिंदगी बन सकता है। अस्थिमज्जा प्रत्यारोपण वाले रोगियों में दोबारा से एक कार्यशील थाइमस की जरुरत को इस लैब निर्मित थाइमस द्वारा पूरा किया जा सकता है।

रक्त स्टेम कोशिकाओं का उपयोग

1. रक्त स्टेम कोशिकाओं की उच्च पुनर्योजी क्षमता का उपयोग रक्त कैंसर के इलाज के लिए किया जा सकता है। रक्त स्टेम कोशिकाओं को भ्रूण की महाधमनी– जननपिंड – मिजोनेफरोज क्षेत्र से, कोशिकाओं के सतह के खिलाफ एंटीबॉडी (विरोधी सी डी 45 और विरोधी वी ई कडेरिन) तथा चुम्बकीय सेल जादुई तकनीक (एमएसीएस) के द्वारा अलग किया जा सकता है।
2. बीटा थैलेसीमिया एक विरासतीय रक्त संबंधित रोग है। अनिषेचित अंडे को कल्चर कर भ्रूण स्टेम कोशिकाएँ ली जाती हैं जिन्हें पार्थेनोजेनेटिक भ्रूण स्टेम कोशिकाएं कहा जाता है। इन कोशिकाओं में से ऐसी कोशिकाएँ जिनमें बीमारी के लिए जीन नहीं हैं, को छांटकर व रोगी में प्रत्यारोपण कर इस रोग का उपचार संभव है। स्टेम कोशिकाओं का रक्त संबंधित बीमारियों के इलाज में इस्तेमाल का सबसे बड़ा फायदा है कि ये स्वस्थ तथा लंबे समय तक रक्त प्रतिस्थापन प्रदान कर सकती हैं, क्योंकि इनमें विखंडन कर असीमित मात्रा में कोशिकाएं प्रदान करने की क्षमता होती है। पार्थेनोजेनेटिक कोशिकाएँ इस्तेमाल करने का फायदा यह है कि ये रोगी के लिए अज्ञात नहीं होती, इसलिए प्रतिरक्षा अस्वीकृति की समस्या नहीं रहती। यह ओटोसोमल डोमिनेंट बीमारियों के लिए एक संभव इलाज हो सकता है। क्योंकि पार्थेनोजेनेटिक भ्रूण स्टेम कोशिकाएं एक ही प्रकार की जनन कोशिकाओं से बनाई जाती हैं, इसलिए इनमें एक ही जेनेटिक सेट की सूचना होती है। इसी वजह से जिस सेट में सामान्य जीन का प्रयोग हो उन रोगों के उपचार में प्रयुक्त किया जा सकता है, जिनके लिए असामान्य जीन एक ही सेट में हो या फिर जिन का कुछ हिस्सा खत्म हो गया हो।

स्टेम कोशिकाओं से निर्मित मस्तिष्क कोशिकाओं का उपयोगः

1. इनका उपयोग अल्जाइमर में न्यूरानों व कोशिकाओं की मृत्यु का कारण जानने में किया जाता है, जिससे उनके लिए उचित उपचार ढूढ़ने में मदद मिल सके।
2. अल्जाइमर की दवाओं के परीक्षण में इनका इस्तेमाल किया जाता है।
3. लैब निर्मित बेसल अग्रमस्तिष्क कोलिनर्जिक न्यूरानों को स्मृतिहीन रोगियों के इलाज (जैसे अल्जाइमर के रोगियों में प्रारम्भिक स्थिति) में किया जाता है।
4. दवा निर्माता इन कोशिकाओं का उपयोग ऐसी दवाओं को स्क्रीन करने में करतें हैं, जो मस्तिष्क में न्यूरानों की रक्षा में मदद करती हैं।

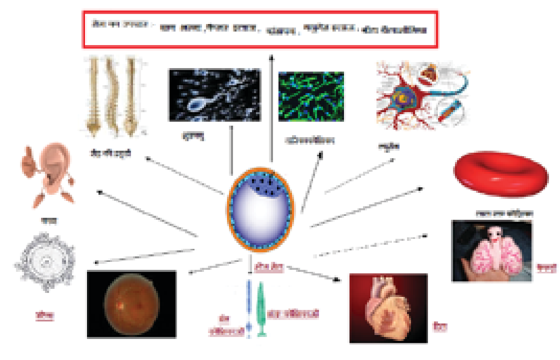

चित्र 1. रोग का उपचार

अंधेपन व विभिन्न नेत्र रोगों का इलाज

(अ) अंधेपन से संबंधित दो मुख्य रोग हैं :–

1. उम्र संबंधित सूखा मेकुलर डिजनेरेशन रोग

2. स्टारगरडट मेकुलर डिस्ट्रोफी

भ्रूण स्टेम कोशिकाओं को विशेष नेत्र कोशिकाओं (रेटिनल वर्णक उपकला) में परिवर्तित कर इन्हें इन रोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

(ब) त्वचा से ली गई कोशिकाओं को प्रेरित स्टेम कोशिकाओं में परिवर्तित कर इनका उपयोग रेटिना जैसा उत्तक बनाने में किया जाता है। इस रेटिना का आकार शुरुआती आंख के विकास की स्थिति जैसा होता है इसलिए यह हमें रेटिना के विकास के अध्ययन में मदद कर सकता है।

(स) माउस भ्रूण स्टेम कोशिकाओं को प्रोटीन युक्त पोषण सूप व प्रोटीन जेल (जो उन्हें जुड़ने में मदद करें) में कल्चर करवाकर उन्हें रेटिना में रूपांतरित किया जा सकता है। रेटिना अब तक इंजीनियर किया गया सबसे जटिल उत्तक है। इस कृत्रिम रेटिना का प्रत्यारोपण कर क्षतिग्रस्त रेटिना, आँख के रोगों के अध्ययन व उचित उपचार ढूढ़ने में मदद कर सकता है।

(ट) मानव भ्रूण स्टेम कोशिकाओं का प्रयोग वर्णक कोशिकाएं (जो रेटिना को पोषक तत्व प्रदान करती हैं), कोशिकाओं की परतें (जो लेंस से मेल खाती हैं) तथा प्रकाश संवेदी रेटिनल कोशिकाएं बनाने में किया जा सकता है। इन्हें प्रत्यारोपण कर विभिन्न आँखों से संबंधित रोगों जैसे रेटीनाइटिस पिगमंटोस का इलाज संभव है।

(ठ) अन्य शरीर की कोशिकाओं को प्रेरित स्टेम कोशिकाओं में परिवर्तित कर उनसे फोटोरिसेप्टर व रेटिना वर्णक उपकला कोशिकाएँ बनाकर व उनका प्रत्यारोपण कर उन्हें दुर्लभ चकाचौंध जैसे रोग के इलाज में प्रयुक्त किया जाता है।

कृत्रिम खून की उपलब्धता

इंविट्रोफर्टिलाईजेशन तकनीक द्वारा उत्पन्न भ्रूण से ली गई भ्रूणीय स्टेम कोशिकाओं का प्रयोग रक्त स्टेम कोशिकाएं बनाने में किया जाता है, जिनसे लाल रक्त कणिकाएं बनाई गई हैं तथा इनसे उत्पादित रक्त का समूह 'O' नकारात्मक है। 'O' नकारात्मक समूह एक ''सार्वभौमिक रक्तदाता'' समूह है इसलिए किसी भी जरूरतमंद रोगी को बिना प्रतिरक्षा अस्वीकृति सम्भावना के दिया जा सकता है। यह रक्त समूह केवल 7% लोगों में पाया जाता है। इसलिए रक्त के लिए अब इच्छुक दाताओं पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त दाता से प्राप्तकर्ता में संक्रमण फैलने का भय भी नहीं रहता है।

कैंसर से रक्षा

1. कैंसर तथा स्टेम कोशिकाओं में अनेक जैविक व आण्विक समानताएं पाई जाती हैं इसलिए हम इन कोशिकाओं के टीकाकरण से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को छल सकते हैं, जिससे वे इन स्टेम कोशिकाओं को कैंसर कोशिकाएं समझें तथा ट्यूमर से लडने के लिए हमारे शरीर में प्रतिरक्षा पैदा हो जाए।

2. मानव भ्रूण स्टेम कोशिकों से बनाई प्रतिरक्षा कोशिकाओं का कैंसर विरोधी क्षमता का प्रयोग सेल आधारित कैंसर चिकित्सा में किया गया। ये कोशिकाएं शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली से बचकर शरीर की प्राकृतिक किलर कोशिकाओं की तरह ट्यूमर को पूरी तरह समाप्त करने की क्षमता रखती हैं। ये ट्यूमर में घुसकर इसे मार देती हैं। परन्तु समस्या यह है कि असंबंधित दाता से ली गई मानवीय भ्रूण स्टेम कोशिकाएं शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा समाप्त कर दी जाती हैं। इस समस्या को प्रेरित स्टेम कोशिकाओं (जिनकी प्रवृति लगभग भ्रूण स्टेम कोशिकाओं की तरह होती है) का इस्तेमाल कर सुलझाया जा सकता है, जो रोगी के उत्तक से ही बनाई जाती हैं। इस चिकित्सा का प्रयोग ल्यूकेमिया, मानव स्तन व प्रोस्टेट की ठोस ट्यूमर व वृष्ण कैंसर में किया गया है।

इंसुलिन के टीकों की अब नहीं रही जरुरत

प्रकार–1 डाइबिटिज में शरीर की इंसुलिन बनाने वाली बीटा–आइसलेट कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं। यह बीमारी मुख्य रूप से बच्चों तथा जवान लोगों को होती है। इन रोगियों को इंसुलिन के टीकों पर निर्भर रहना पड़ता है। भ्रूण स्टेम कोशिकाओं को प्राकृतिक वृद्धि कारकों की मदद से अग्नाशय कोशिकाओं में परिवर्तित कर तथा त्वचा के नीचे प्रत्यारोपित करने से रोगी को इंसुलिन के टीके लेने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि ये प्रत्यारोपित कोशिकाएं पर्याप्त मात्रा में इंसुलिन पैदा करती हैं। परन्तु प्राप्तकर्ता की प्रतिरक्षा प्रणाली इन कोशिकाओं को नष्ट कर सकती है। इसलिए एक ऐसे आवरण को प्रत्यारोपित किया गया जिसमें कोशिकाएं भरी होती हैं तथा इसमें शुगर अन्दर जा सकती है व इंसुलिन बाहर आ सकती है। यह एक साल से भी अधिक डायबटीज नियंत्रित कर सकता है।

रोगी की प्रतिरक्षा प्रणाली से प्रत्यारोपित कोशिकाओं को बचाने का एक और साधारण तरीका है। पहले रोगी की प्रतिरोधक क्षमता को पूरी तरह नष्ट कर दिया जाए तथा फिर प्रत्यारोपण किया जाये। इसके बाद रक्त स्टेम कोशिकाओं की मदद से फिर रोगी को नई प्रतिरोधक क्षमता प्रदान की जाए जो कि प्रत्यारोपित कोशिकाओं को नष्ट नहीं करेगी, क्योंकि ये कोशिकाएं अब शरीर के लिए अज्ञात नहीं हैं।

श्रवण क्षमता का निर्माण

कई प्रकार का बहरापन तथा श्रवण क्षमता को भ्रूण स्टेम कोशिकाओं या प्रेरित स्टेम कोशिकाओं का इंजेक्शन देकर फिर से प्राप्त किया जा सकता है। ये कोशिकाएं मध्य कर्ण के गहरे आंतरिक भाग में जाकर वहां उन कोशिकाओं में बदल जाती हैं जो श्रवण क्षमता खोने के समय नष्ट हो गई होती हैं।

रोगी से प्रेरित कोशिकाएं लेकर तथा इन्हें विभिन्न प्रोटीन तथा रसायनों की मदद से सुनने में मदद करने वाली कोशिकाओं में बदला जा सकता है। इन कोशिकाओं को ऐसी दवाओं के परीक्षण में इस्तेमाल किया जा सकता है। जो दोबारा से श्रवण क्षमता को निर्मित कर देती हैं या कान में सुप्तावस्था कोशिकाओं को क्रियाशील कर सकती हैं ।

कार्यशाला में क्रियाशील हृदय

आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में हृदय से संबंधित समस्याएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रहीं हैं तथा इन बीमारियों के लिए उचित इलाज ढूढ़ना, वैज्ञानिकों एंव दवा निर्माताओं के लिए समस्या बनती जा रही है। इन बीमारियों का प्रमुख कारण हृदय की कुछ महत्वपूर्ण कोशिकाओं की मृत्यु है। इसके लिए डीसेलुराइजेशन विधि का उपयोग कर हृदय में से खराब कोशिकाओं को निकाल दिया जाता है तथा फिर मानवीय भ्रूण स्टेम कोशिकाओं को प्रत्यारोपित किया जाता है। सीधा प्रत्यारोपण की बजाय डिसेलुराइजेशन का उपयोग करने का फायदा यह है कि उत्तक उत्थान के समय अंग की तीन आयामी संरचना बनी रहती है। प्रत्यारोपण के 14 दिनों के बाद हृदय में कार्डियक मार्कर व्यक्त कोशिकाएं व इन्डोथीलियल या रक्त वाहिनियों की कोशिकाओं का निर्माण होता है, जिससे इसमें रक्त वाहिनियों का निर्माण होता है ताकि पोषक तत्वों तथा ऑक्सीजन का परिवहन कर सकें।

बाँझ से अब वंशज संभव

बाँझ पुरुषों तथा स्त्रियों का इलाज भी अब 'स्टेम कोशिका चिकित्सा' से संभव है।

(अ) **बाँझ पुरुषों का इलाज:** मानवीय भ्रूण स्टेम कोशिकाओं को अग्रदूत कोशिकाओं में परिवर्तित कर, जिससे वे ओर विशिष्ट हो जायें तथा उन्हें

बाँझ पुरुष के वृषण में प्रत्यारोपण किया गया है। ये अग्रदूत कोशिकाएं वृषण के वातावरण में शुक्राणुओं में बदल जाती हैं। इन शुक्राणुओं को पुरुष के वृषण से निकालकर व कार्यशाला के कृत्रिम वातावरण में अण्डाणु से मेल कराकर भ्रूण बनाया जाए तथा स्त्री के गर्भाशय में प्रत्यारोपित कर दिया जाये जिससे विकास के लिए उचित परिस्थितियाँ मिलकर सम्पूर्ण जीव की प्राप्ति हो सके।

(आ) **बाँझ स्त्री का इलाज :** इसी प्रकार से, स्त्रियों में भ्रूण स्टेम कोशिकाएँ अण्डाणु में परिवर्तित की जा सकती हैं तथा इन्हें कार्यशाला की कृत्रिम परिस्थियों में शुक्राणुओं से मेल कराकर भ्रूण बनाया जा सकता है। इस भ्रूण को फॉस्टर माँ के गर्भाशय में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है जिससे उसका सम्पूर्ण विकास हो सके।

मानवीय फेफड़ों के रोगों का इलाज

मानव भ्रूण स्टेम कोशिकाओं की हवा तरल इंटरफेस पर कम सीरम, जैसी स्थितियां व्यसक श्वासनली में पाई जाती हैं।इन्हे कल्चर कर फेफड़ों की उपकला कोशिकाओं में परिवर्तित किया जा सकता हैं। इससे फेफड़ों का प्रत्यारोपण फेफड़ों के जख्म वाले मरीजों तथा अन्य कुछ अनुवांशिक रोग जैसे सिस्टिक फाईब्रोसिस में होता है।

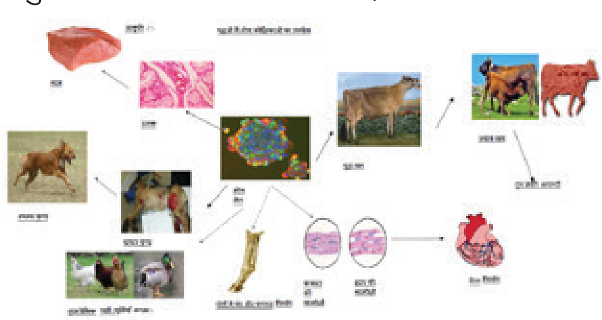

चित्र 2. पशुओं में स्टेम कोशिकाओं का उपयोग

जख्म भरें अब स्टेम कोशिकाएं

स्टेम कोशिकाओं को घायल भाग में इंजेक्शन देकर केवल कुछ ही दिनों में बड़ा जख्म भरा जा सकता है तथा मजबूत मांसपेशियां बनाई जा सकती हैं। इसलिए ऐसी बीमारियां जिसमें मांसपेशियां खराब हो जाती हैं, जैसे पेशी डिस्ट्रोफी, के लिए यह अच्छी चिकित्सा बन सकती है।

ये स्टेम कोशिकाएं ऐसे लोगों के लिए सहारा बन सकती हैं, जिनमें मांसपेशियों की शक्ति उम्र के साथ धीरे–धीरे कम पड़ती जाती हैं। स्टेम कोशिकाएँ, बुढ़ापे में मांसपेशियों की क्षीणता को रोक सकती हैं।

अनबोल पशुओं की बीमारियों का हो रहा उपचार:

1. बूढी गायों के दूध उत्पादन में वृद्धि :

(अ) कलोन्ड गाय के भ्रूण से ली गई स्टेम कोशिकाओं का लगभग एक छोटे चम्मच के बराबर का इंजेक्शन देकर उनसे अच्छी उत्पादकता वाली गायों से भी अधिक दूध की प्राप्ति हो सकती है।

(ब) दुधारू पशुओं में सबसे महत्वपूर्ण समस्या मैस्टाइटिस से नष्ट हुए स्तन उत्तक को दोबारा पुनर्योजित किया जा सकता है।

(स) पशुओं द्वारा ग्रीन हॉउस गैसों के कम उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

2. **संसार का भर सकेंगे अब पेट :** मांसपेशी फाइबर के किनारे पाई जाने वाली कोशिकाओं को क्लचर मिडिया में भीगे हुए फाइबर मैसवर्क पर बायोरियेक्टर द्वारा उनकी संख्या वृद्वि की जा सकती हैं, जिनसे जुड़कर उत्तक बन जाता है, जिसे मीट के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। एक अकेली स्टेम कोशिका से पुरे विश्व के लिए मीट पैदा किया जा सकता है।

3. कुत्तों के हृदय रोगों का निदान

(अ) हृदय की ऐसी बीमारियां जिनके निवारण में पशु चिकित्सा शोध सीमित है, उनका स्टेम कोशिकाओं की मदद से न केवल अध्ययन बल्कि उपचार भी किया जा सकता है।

(ब) डाइलेटीड कार्डियोमायोपैथी के उपचार में इस्तेमाल में लाया जा सकता है।

4. **बकरियों का भी भर गया जख्म:** कैपराइन एमबिलिकल कार्ड की वारटन जैली से प्रत्यारोपित मेजेनकाइमल स्टेम कोशिकाओं को जख्म भरने में इस्तेमाल में लाया जा सकता हैं व ऐसा देखा गया की रिएपथेलाइजेशन सात दिनों में ही पूरा हो जाता है।

5. जख्मी घोड़े भाग सकेगें रेस में :

(क) झटका आने पर वजन युक्त टेंडन फट जाते हैं, इन्हें स्टेम चिकित्सा द्वारा पुनर्योजित किया जा सकता है।

(ख) टूटे फटे लिगामेंट व टेंडन की मरम्मत में स्तवन कोशिका चिकित्सा उपयोग में लाई जा सकती है।

(ग) लेमीनी टीस के उपचार में।

(घ) एथलीट घोडों में सुपरफीशियल डिजिटल फ्लैग्जर टेंडन की मुरम्मत में।

6. ट्रांसजनिक पोलट्री बायोफार्मेसी के लिए ट्रांसजनिक पोलट्री पक्षी बनाकर इंडस्ट्री स्तर पर एक नई क्रांति लाई जा सकती है तथा जिससे आर्थिक स्थितियों में सुधार लाया जा सकता है।

7. काईमेरिक पशु बनाना।

8. टोटीपोटेंट स्टेम कोशिकाओं को रिप्रोडक्टिव क्लोनिंग में प्रयोग कर विभिन्न गंभीर समस्याओं जैसे पशुओं में अबॉरशन की बढ़ती दर, फाईब्रस फीटस व बड़ा बछड़ा सिंड्रोम से छुटकारा पाया जा सकता है।

9. एमबिलिकल कार्ड मैट्रिक्स स्टेम कोशिकाओं जो ट्यूमर तक जा सकती हैं, उन्हें थेराप्युटिक कारक पहुँचाने में इस्तेमाल किया जा सकता है।

10. स्टेम कोशिकाओं का रिप्रोडकटिव क्लोनिंग में उपयोग कर ऐसे पशु मॉडल तैयार किये जा सकते हैं जो मानव से शारीरिक विज्ञान व शारीरिक संरचना में मेल खाते हों और उन्हें दवाओं के परीक्षण में इस्तेमाल किए जा सकता है। इससे क्लीनिकल चिकित्सा तक दवाओं के पहुँचने के स्तरों तक कम किया जा सकता हैं, जिससे वे जल्दी मार्केट स्तर पर आ जाएंगी।

11. अडनेगजल उत्तक जिसे गैर इनवेसिव तरीके से अलग किया जा सकता है व ज्यादा मात्रा में स्टेम कोशिकाएं प्राप्त की जा सकती हैं। इनका उपयोग विकासात्मक जीव विज्ञान तथा पुनर्योजी चिकित्सा में जैसे उदाहरण के तौर पर चोटों के लिए उत्तक उत्थान में इस्तेमाल किया जा सकता है। ऐसे जख्म जो प्राकृतिक मरम्मत तंत्र व वर्तमान चिकित्सा प्रणाली की नीतियों द्वारा नहीं भरे जा सकते हैं, उनके लिए यह एक 'मरहम चिकित्सा' सिद्ध होगी।

बढ़ रहा है स्टेम कोशिकाओं का व्यापार व् सुधर रही है आर्थिक व्यवस्था :

विभिन्न प्रकार की कम्पनियाँ स्टेम कोशिका व्यापार में लगी हुई हैं जिससे देश की 'जनसँख्या वृद्धि' के बाद दूसरी बड़ी समस्या 'बेरोजगारी' को शोध के साथ–साथ दूर किया जा सकता है। कैलीफोर्निया स्टेम कोशिका शोध में संसार का 'लीडर' देश है।

तालिका 1. विश्व स्तर पर स्टेम कोशिका व्यापार में लगी कम्पनियाँ

क्र. सं.	कम्पनी	स्थान	व्यापारिक उत्पाद का प्रकार
1	रेगेनियस	आस्ट्रेलिया	स्टेम कोशिका चिकित्सा
2	अपोसाइंस	आस्ट्रिया	साईंटोकाइन, वृद्वि कारकों तथा दूसरे एक्टिव तत्वों द्वारा मिश्रित चिकित्सा
3	नियोस्टेम ओन्कोलोजी	डरवाइन, सीए	स्टेम कोशिका अनुसन्धान उत्पाद
4	स्टेमिडिया सेल टेक्नोलोजी	सेअन डीगो, सीए	स्टेम कोशिका उत्पादन
5	बीटा स्टेम थेराप्यूटीकस	सैन फ्रंसिको, सीए	हेम्टोपाईटिक स्टेम कोशिका उपचार के लिए अभिकर्मक बेचना
6	वियाकार्ड	बोस्टन,एम्	गर्भ नल रक्त बैंकिंग
7	प्लेयूरियोन	विस्तन सलेम	प्ल्यूरिपोटेंट स्टेम कोशिकाएं जो की एम्नियोटिक द्रव व् प्लेसेन्टा से निकाली जाती हैं।
8	मेसोब्लास्ट	न्यूयार्क, एन वाई	पुनर्योजी चिकित्सा
9	रोजलिन सेल	एडिनबर्ग, यू के	स्टेम कोशिकाएं
10	सेलाराटीज	डंडी, ब्रिटेन	स्टेम सेल प्रोद्योगिकी

इस कारण स्टेम कोशिका प्रोद्योगिकी राज्य की आर्थिक स्थितियों को सुधारने में सहायता कर सकती हैं। क्योंकि करीब 70% से अधिक मेडिकल समस्याओं का निदान 'स्टेम कोशिका चिकित्सा' से किया जा सकता है जिससे बाहरी देशों से भी आय कमाई जा सकती हैं।

'केलीफोर्निया रिजेनेरेटिव मैडिसन संस्थान' करीब 26 बीमारियों का इलाज पता कर रहा है, इनमें से एक इलाज मिल जाने पर खरबों डॉलर बचाए जा सकते हैं, इससे लोगों की आर्थिक व्यवस्था सुधारने में भी मदद मिल सकती है।

तालिका 2. विभिन्न स्टेम कोशिका कम्पनियों का मार्केट में स्तर

क्र. सं.	कम्पनी	मार्केट
1	लाइफ स्टेम जेनेटिक्स इन्कोर्पोरेशन	+133.33%
2	अडवांस्ड सेल टेक्नोलोजी इनकार्पोरेशन	+2.65%
3	ब्रेनस्ट्रोम सेल थेराप्यूटीक	+7.89%
4	क्र्योसेल इंटरनेशनल इनकार्पोरेशन	+6.69%
5	टेक्सुकर्डीयम फार्मास्यूटिकल ग्रुप इनकार्पोरेशन	+4.5%
6	साईटोरी थ्रेप्यूटिक्स	+7.34%
7	साईटोमेडिक्स	+2.6%
8	चाइना कार्ड ब्लड कार्पोरेशन	+2.58%
9	नियोस्टेम इन्कार्पोरेशन	+4.89%
10	न्यूराल्स्टेम इनकार्पोरेशन	+4.15%
11	मेसबी ट्रस्ट	+2.65%
12	अरटाना थ्रेप्यूटीक्स इनकार्पोरेशन	+4.78%

10 और नई कम्पनियाँ जो बाजार में आजकल अपने पांव जमा रही हैं वे तालिका 3 में दी गई हैं।

तालिका 3. स्टेम कोशिका व्यापार में उभरती हुई कम्पनियाँ

1	हावर्ड अपरेट्स रिजेनेरेटिव टेक्नोलोजी
2	सी एस आई एस पी आर प्रेराज्यूटिक्स
3	रिजेनोवो बायोटेक्नोलोजी
4	साईनाटा थेराज्यूटिक्स
5	ट्रेक्सेल
6	सेल टयू बी
7	साईफ्यूज बायोमेडिकल
8	अन्जियोक्राइन बायोसाइंस
9	बायोमैट्रिका
10	प्लेटलेट बयोजेनेसिस

निष्कर्ष

इस लेख में दी गई चर्चा से यह प्रतीत होता है कि किस तरह से वैज्ञानिको तथा अध्ययनकर्ताओं द्वारा स्टेम कोशिकाओं की आत्म नवीनीकरण व नई परिपक्व कोशिकाओं को जन्म देने की क्षमता का उपयोग विभिन्न मानवीय व पशु रोगों तथा विकारों को दूर करने में किया जा सकता है। ये कोशिकाएं जादुई सामान की तरह विभिन्न रूप व आकार की कोशिकाओं में बदलने की क्षमता रखती हैं तथा लगभग हर प्रकार के शारीरिक विकार को इनके प्रयोग से दूर किया जा सकता है।

ऊँटों में कृत्रिम गर्भाधान

ए एस महला[1], आर के चौधरी[1], ए एस गोदारा[1], बी एल कुमावत[1], एस के बड़सरा[1], अमित[1], आर के योगी[2] एवं आलोक कुमार यादव[2]

[1] शोध छात्र, भाकृअनुप–भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उ.प्र.)

[2] शोध छात्र, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)

विगत तीन–चार दशकों में कृत्रिम गर्भाधान घरेलू पशुधन में अनुवांशिक सुधार की सबसे महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में उभरी है। आज यह तकनीक गाय, भैंस, घोड़ा भेड़ आदि पशुओं में गर्भाधान के लिए नियमित रूप से उपयोग की जा रही है। ऊँटों में इस तकनीक का प्रयोग करते हुए सर्वप्रथम सन् 1961 में दो कूबड़ वाले ऊँट से बछड़े की प्राप्ति की गई थी। ऊँटों में देरी से वय:सन्धि और वयस्कता का आना, सीमित प्रजनन काल, लम्बा गर्भकाल, निश्चित मद चक्र का न होना, स्पष्ट मद लक्षणों का परिलक्षित न होना आदि कारक हैं जो इनमें निम्न प्रजनन क्षमता के लिए उत्तरदायी हैं। कृत्रिम गर्भाधान का विवेकपूर्ण उपयोग ऊँट जैसी निम्न प्रजनन क्षमता वाली प्रजाति में भी सकल प्रजनन दक्षता को बढ़ाने एवं अनुवांशिक सुधार में कारगर साबित हो सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान के लाभ

1. अनुवांशिक रूप से उन्नत नर के वीर्य का उपयोग कर एक समय में एकाधिक गर्भाधान। इस प्रकार प्रजनन में प्रयुक्त नर ऊंटो की संख्या में कमी कर प्रबंधन के आर्थिक भार से बचाव।
2. प्रजनन के लिए पशु के स्थानांतरण की बजाय वीर्य के स्थानांतरण द्वारा परिवहन के खर्चो व खतरों से निजात।
3. नर व मादा में समागम के दौरान फैलने वाली बीमारियों के खतरे से बचाव।
4. नर की व्यावहारिक समस्या जैसे कि विशेष मादा के प्रति नापसंदगी आदि से छुटकारा
5. वीर्य का 24 घंटे या अधिक परिरक्षण, जिससे इसको एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में आसानी।
6. हिमीकरण द्वारा परिरक्षित ऊँट के जनन द्रव्य का इसकी मृत्यु के पश्चात् भी उपयोग सम्भव।
7. पशु के स्थानान्तरण की बजाए उन्नत पशु के वीर्य के आयात या निर्यात से पशुधन के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में सुगमता।

वीर्य संग्रहण

ऊँट का वीर्य संग्रहण गाय, भैंस जैसे पशुओं की तुलना में अधिक कठिन होता है जिसके कारण हैं–ऊँट का बैठी अवस्था में समागम करना, ऊँट का उग्र होना, स्खलन में अधिक समय का लगना (5–20 मिनट) और वीर्य का अत्यधिक गाढ़ा होना।

ऊँट में वीर्य का संग्रहण मुख्यत: कृत्रिम योनि की सहायता से किया जाता है। साँड़ (बैल) के वीर्य संग्रहण में प्रयुक्त कृत्रिम योनि (30 सेमी. लम्बी एंव 5 सेमी. व्यास) ऊँटो के वीर्य संग्रहण में सफल परिणाम के साथ प्रयोग की जा सकती है। यह कृत्रिम योनि एक कठोर रबड़ नली, एक लटेक्स रबर के बने आन्तरिक अस्तर, एक रबर शंकु या कोन, एक संग्राहक नलिका और एक ताप कुचालक जैकेट या आवरण के संयोजन से बनी होती है। कृत्रिम योनि की बाहरी कठोर नली और आन्तरिक रबर अस्तर के बीच 55–60° से. ताप वाला पानी भरा जाता है ताकि कृत्रिम योनि का आन्तरिक तापमान 38–40° से. पहुंच जाए। दाब उत्पन्न करने के लिए दोनो स्तरों के बीच हवा भरी जाती है।

वीर्य के संग्रहण के लिए एक लैंगिक ग्राही मादा काम में ली जाती है। मस्त में आया हुआ ऊँट उत्तेजित होकर इस पर बैठ कर समागम की अवस्था में आ जाता है। एक संग्रहणकर्ता बैठ कर कृत्रिम योनि को मादा के पश्चभाग के पास रखता है। ज्योंही नर उत्तेजित होकर समागम का प्रयास करता है, संग्रहणकर्ता नर के शिश्न शीथ/आच्छद को पकड़कर शिश्न को कृत्रिम योनि में प्रवेश करा देता है। नर में वीर्य का स्खलन कई भागों में होता है तथा पूरी प्रक्रिया में 5–15 मिनट लग जाते हैं। ऊँटो में वीर्य संग्रहण प्रजनन काल में सामान्यतः हर दूसरे दिन करना चाहिए। मस्त में आए हुए उग्र ऊँट से वीर्य संग्रहण करते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि ऐसा ऊँट संग्रहणकर्ता को नुकसान पहुंचा सकता है।

अगर कृत्रिम योनि से वीर्य संग्रहण में सफलता नही मिलती है तो विद्युत स्खलन विधि का प्रयोग किया जा सकता है। इस विधि में ऊँट को शामक दवा द्वारा बेसुध कर, एक तरफ लिटाकर एंव रस्सों से बांधकर विद्युत स्खलक का प्रोब नर के मलाशय में रखा जाता है। 3–4 सेकण्ड के समयांतराल से 10–15 विद्युतीय स्पंदन देने पर तथा 2–3 मिनट बाद एक बार फिर इनकी पुनरावृति करने पर नर में वीर्य का स्खलन हो जाता है। वीर्य को एक फ्लास्क में संग्रहित कर लिया जाता है। इस विधि द्वारा संग्रहित वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या कम होती है। इसके अलावा वीर्य के मूत्र द्वारा दूषित होने का भी खतरा रहता है। अतः यह विधि शारीरिक रूप से अक्षम उन्नत नस्ल के ऊंटो व अत्यधिक उग्र ऊंटो के वीर्य संग्रहण में ही प्रयोग में लेनी चाहिए।

वीर्य का परीक्षण

संग्रहण के पश्चात् वीर्य का निम्नलिखित मापदण्डों के लिए मुल्यॉंकन किया जाता है–

1. **आयतन/मात्रा**–स्खलित वीर्य को संग्राहक नली से सीधे ही मापा जा सकता है। सामान्यतः ऊंट में स्खलित वीर्य की मात्रा 2–10 मिली होती है।
2. **रंग**–ऊँट के वीर्य का रंग धूसर पारभासी (जैली अंश अधिक व शुक्राणु कम) से दुधिया सफेद (शुक्राणुओं की संख्या अधिक) हो सकता है।
3. **गाढ़ापन**–वीर्य का अत्यधिक गाढ़ा होना, ऊँट के वीर्य की विशेषता है। अत्यधिक गाढ़ापन वीर्य के मूल्यॉंकन व प्रबंधन को बाधित करता है। ताजा स्खलित वीर्य कमरे के ताप (25–37° से.) पर 5–10 मिनट से लेकर 8 घंटे तक आंशिक रूप से द्रवित या पतला हो जाता है।
4. **शुक्राणुओं की गतिशीलता** – ताजा स्खलित ऊँट के वीर्य में शुक्राणुओं की सामूहिक गति नहीं देखी जाती है क्योंकि इसमें शुक्राणु तंतुमयी जाल में फंसे होते है। ये तंतुमयी जाल एक शुक्राणु संग्राहक का कार्य करता है जैसा कि गाय, भैंस में बच्चेदानी के मुंह में शुक्राणु संग्राहक होता है। यह गाढ़ा जमा हुआ वीर्य धीरे–धीरे द्रवित होकर शुक्राणुओं को लम्बे समय तक छोड़ता रहता है और ऊँटनी में समागम के लगभग 30–48 घण्टे बाद अंडोत्सर्ग के समय अण्डवाहिनी नली में शुक्राणुओं की उपस्थिति को संभव बनाता है। तनुकृत वीर्य की एक बूंद को मामूली गर्म की हुई कॉंच की स्लाइड पर रखकर सूक्ष्मदर्शी की सहायता से शुक्राणुओं की व्यक्तिगत गतिशीलता को आसानी से देखा जा सकता है। वीर्य अत्यधिक गाढ़ा होने की वजह से इसमें शुक्राणुओं की प्रारम्भिक गतिशीलता बहुत कम होती है जो कि द्रवित होने पर बढ़ जाती है।
5. **शुक्राणुओं की सान्द्रता** –शुक्राणुओं की संख्या को रक्त में रुधिर कणिकाओं की संख्या ज्ञात करने में प्रयुक्त होने वाले हीमोसाइटोमीटर की सहायता से ज्ञात किया जाता है। सामान्यतः ऊँट के वीर्य में शुक्राणुओं की सान्द्रता 150–300x10^6 शुक्राणु प्रति मिली होती है।
6. **शुक्राणुओं की जीवन क्षमता**– कांच की स्लाइड पर वीर्य की पतली परत बनाकर इसे इओसिन–नाइग्रोसिन नामक अभिरंजक (डाई)

से अभिरंजित कर, सूक्ष्मदर्शी की सहायता से शुक्राणुओं की जीवन क्षमता को देखा जाता है। मृत शुक्राणु अभिरंजित होकर बैंगनी रंग के जबकि जीवित शुक्राणु अभिरंजक को ग्रहण नहीं करते एवं रंगहीन दिखाई देते है।

7. **शुक्राणु संरचना**–अभिरंजित वीर्य परत को सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखकर असामान्य संरचना वाले शुक्राणुओं का मूल्यांकन किया जा सकता है।

वीर्य का परिरक्षण

ताजा एकत्रित वीर्य को परिरक्षित करने से पहले इसे एक उपयुक्त विस्तारक की सहायता से तनुकृत किया जाता है। तनुकरण द्वारा एक स्खलन से प्राप्त वीर्य से कई खुराक तैयार की जा सकती है जिससे एक नर से स्खलित वीर्य को एकाधिक मादाओं के गर्भाधान में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके अलावा ये विस्तारक वीर्य के परिरक्षण के दौरान शुक्राणुओं की जीवनक्षमता बनाए रखने में भी सहायक होते हैं।

ऊँटो में वीर्य के तनुकरण के लिए कई प्रकार के विस्तारक प्रयोग में लिए जाते हैं। ये विस्तारक सामान्यतः एक ऊर्जा स्रोत (ग्लूकोज या फ्रूक्टोज), शीताघात से बचाने के लिए लिपोप्रोटीन स्त्रोत (अण्डपीत या दूध), आयनों के नियंत्रण के लिए बफर और प्रतिजैविक (एंटीबायॉटिक) आदि से मिलकर बने होते हैं। ट्रिस–सिट्रेट–अण्डपीत विस्तारक, ग्रीन बफर–अण्डपीत विस्तारक, इनरा–96, शॉटोर आदि विस्तारक सामान्यतः ऊँट वीर्य के तनुकरण के लिए सफल परिणाम के साथ प्रयुक्त किये जाते हैं।

वीर्य को एकत्र करने के पश्चात् इसे 1:1 से 1:3 (वीर्यः विस्तारक) के अनुपात में विस्तारक से तनु किया जाता है। अगर वीर्य को एकत्र करने के पश्चात कुछ देर के लिए द्रवित होने के लिए छोड़ दिया जाये, तत्पश्चात विस्तारक डाले जाये तो इसके घुलने में सुगमता होती है। ताजा संग्रहित वीर्य के द्रवीकरण के लिए विभिन्न एंजाइम और यान्त्रिक फैंटाई आदि विधियों का प्रयोग भी किया जा सकता है। एक अध्ययन में कॉलेजिनेज एंजाइम–I का उपयोग करते हुए वीर्य के द्रवीकरण में सफलता प्राप्त की गई तथा वीर्य के गुणधर्मो जैसे शुक्राणुओं की गतिशीलता एवं कार्यात्मक गतिविधियों में सुधार देखा गया।

यदि उपरोक्त विस्तारकों से तनुकृत वीर्य को कक्ष तापमान या 37° से. पर रखा जाये तो इसे लगभग एक घन्टे के भीतर गर्भाधान में प्रयोग करना चाहिए। इससे अधिक समय (लगभग 48 घन्टे) के लिए परिरक्षित करने के लिए तनुकृत वीर्य को धीरे–धीरे ठण्डा करके 4–5° से. ताप पर रेफ्रिजरेटर में परिरक्षित करना चाहिए।

अत्यधिक लम्बे समय तक वीर्य के परीरक्षण के लिए गहन हिमीकरण तकनीक सबसे कारगर है। इस विधि द्वारा वीर्य को सैद्धान्तिक रूप से अनन्त समय के लिए परिरक्षित किया जा सकता है। इस विधि में विस्तारक में एक हिम संरक्षक (क्रायोप्रोटेक्टेन्ट) पदार्थ, जैसे कि ग्लिसरॉल उपयोग में लिया जाता है। यह ग्लिसरॉल अत्यधिक निम्न ताप पर शुकाणुओं के जीवित रहने में सहायक होता है। हिमीकरण के लिए वीर्य को स्ट्रा (0.25, 0.5 अार 4 मिली आयतन), सम्पुटक (एम्प्यूल), गोली या गुटिका (पैलेट) और कायोवायल के रूप में पैक कर परिरक्षित किया जा सकता है। इस विधि मे वीर्य को द्रव नाइट्रोजन में (–196° से.) पर रखा जाता है। इस तापमान पर शुक्राणु की सभी गतिविधियां शून्य हो जाती हैं। हिमीकृत वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान की सफलता मुख्यतः हिमीकरण प्रोटोकॉल पर निर्भर करती है।

गर्भाधान

मादा ऊँट एक प्रेरित अण्ड उत्सर्गक होती है अतः कृत्रिम गर्भाधान करवाने से पहले, अण्डोत्सर्ग के लिए उसे नसबंदी करवाये हुए ऊँट से समागम करवाना या हारमोन का इन्जेक्शन लगाना आवश्यक है। नसबंदी किए ऊँट से समागम द्वारा अण्डोत्सर्ग करवाने पर नर से मादा में बीमारी फैलने का खतरा अधिक रहता है। अतः अण्डाशय पर सही माप के पुटक पिण्ड (फॉलिकल) की उपस्थिति

में हारमोन का इंजेक्शन लगवाना अण्डोत्सर्ग करवाने की सर्वोतम विधि है। यह देखा गया है कि 1.0–1.9 सेमी फॉलिकल की उपस्थिति में 20 माइक्रोग्राम बुसरेलिन (जी.एन.आर.एच.) या 5000 अन्तर्राष्ट्रीय इकाई एच.सी.जी. लगवाने पर अण्डोत्सर्ग की संभावना लगभग 80 प्रतिशत तक रहती है।

अधिकांश वैज्ञानिक अध्ययनों में यह पाया गया है कि अण्डोत्सर्ग नर से समागम के लगभग 30–48 घन्टे के पश्चात होता है। अतः कृत्रिम गर्भाधान हारमोन इंजेक्शन लगाने के लगभग 24 घन्टे पश्चात् करने पर गर्भधारण की संभावना बढ़ जाती है। हिमीकृत वीर्य उपयोग करने पर हारमोन इंजेक्शन के 24 घन्टे व 48 घन्टे पश्चात दो बार गर्भाधान करवाना चाहिए।

परिरक्षित वीर्य की तुलना में ताजा एकत्रित वीर्य से गर्भाधान करवाने पर गर्भधारण की सम्भावना अधिक होती है क्योंकि शीतलन या हिमीकरण प्रक्रिया के दौरान अत्यधिक शुक्राणुओं की मृत्यु हो जाती है एवं हिमीकृत वीर्य के पुनः द्रवीकरण के पश्चात् इसमें शुक्राणुओं की गतिशीलता काफी कम पायी जाती है। ताजा संग्रहित वीर्य को तनु करके 30 मिनट के भीतर गर्भाधान में प्रयुक्त करने पर 50–60 प्रतिशत गर्भाधारण दर देखी गयी है। शीतकरण द्वारा परीरक्षित वीर्य को 24 घन्टे पश्चात् उपयोग करने पर गर्भाधारण दर 25–30 प्रतिशत तक गिर जाती है। एक कूबड. वाले ऊंट में हिमीकृत वीर्य का उपयोग करते हुए कृत्रिम गर्भाधान अभी तक सफल नही रहा है तथा गर्भधारण दर लगभग नगण्य ही देखी गयी है।

गर्भाधान के लिए मादा को बैठाकर रस्सों से बांधा जाता है तथा 60–100 मि.ग्रा. जाइलेजिन दवा से शामित किया जाता है। यदि हिमीकृत वीर्य को गर्भाधान में प्रयोग करना हो तो इसे गर्म पानी के बीकर में पुनः द्रवित किया जाता है। स्ट्रा में परिरक्षित वीर्य को पुनः द्रवण के लिए 40° से. पर 30–60 सेकण्ड तक, जबकि एम्प्यूल या क्रायोवायल को 40–45° से. पर 2 मिनट के लिए रखा जाता है। एक कठोर प्लास्टिक नली या कैथेटर को योनि मार्ग से बच्चेदानी के मुंह तक प्रवेश कराया जाता है तथा मलाशय में हाथ रखकर इसे निर्देशित कर गर्भाशय तक पहुंचाया जाता है। एक सीरिंज की सहायता से वीर्य को इस नली में धकेल कर गर्भाशय में छोड़ दिया जाता है। यदि स्ट्रा को गर्भाधान में प्रयुक्त करना हो तो गाय–भैंस के गर्भाधान में उपयोग ली जाने वाली स्टील गन या कैथेटर को भी काम में लिया जा सकता है। कृत्रिम गर्भाधान में प्रयुक्त वीर्य में जीवित शुक्राणुओं की संख्या लगभग 150 x 10^6 सर्वोचित है। यद्यपि वीर्य को गर्भाशय के अंतिम छोर (हॉर्न) मे छोड़ा जाये तो कम शुक्राणु साद्रता वाले वीर्य (80 x 10^6 शुक्राणु) का उपयोग भी किया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान में समस्याएं

1961 में दो कूबड़ वाले ऊंट में प्रथम बार कृत्रिम गर्भाधान का प्रयोग कर बछड़े की उत्पति के लगभग पचास साल बाद भी यह तकनीक ऊंटो में बहुत सफल नहीं हुई है। ऊंटों में कृत्रिम गर्भाधान की कम सफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

1. वीर्य संग्रहण में कठिनाई– सीमित समय के लिए ऊँट में लैंगिक क्षमता का होना, ऊँट का धरातल पर बैठ कर समागम करना, मस्त में ऊँट का उग्र होना, समागम काल अत्यधिक लम्बा होना आदि कारक है, जो वीर्य संग्रहण को मुश्किल बनाते हैं।
2. स्खलित वीर्य में शुक्राणुओं की गतिशीलता का कम होना–वीर्य के अत्यधिक गाढ़े होने और शुक्राणुओं के तंतुमयी जाल में फंसे होने की वजह से इनकी गतिशीलता बहुत कम होती है। इसके अलावा वीर्य का जैली रूप में होने की वजह से इसमें विस्तारक का घुलना मुश्किल होता है।
3. वीर्य परिरक्षण का एक निश्चित प्रोटोकॉल न होना ।
4. मादा का प्रेरित अण्डोत्सर्गी होना।
5. मादा का मद लक्षणों का स्पष्ट परिलक्षित न होना।
6. मादा में सर्विक्स छोटी होने व ढलाान की वजह से गर्भाशय से वीर्य का वापस बाहर निकल जाना।

माइक्रोसैटेलाइट – लोकप्रिय आणविक चिह्नक

राकेश कुमार, बी डी लखचौरा एवं रीना अरोड़ा

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल–132001

डीएनए प्रौधोगिकी के उद्भव से ऐसे आणविक चिह्नको का विकास हुआ है जो व्यक्तियों के बीच बहुरूपता का पता लगाने तथा व्यक्तिगत पहचान के लिये भी बहुत ही सटीक, सुविधाजनक व लागत–प्रभावी पाए गए हैं। ये आणविक चिह्नक तकनीकियां जैसे कि आर एफ एल पी, आर ए पी डी, ए एफ पी, डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग, माइक्रोसैटेलाइट और सबसे नवीनतम माइक्रोअरेज, अन्य परम्परागत तकनीकियों जैसे प्रोटीन बहुरूपता आदि से लाभप्रद हैं क्योंकि ये तकनीकियां नमूने का सीधे डीएनए स्तर पर आंकलन करती हैं तथा इनकी सटीकता की सम्भावनाएं भी बहुत ज्यादा होती हैं (अरोड़ा एवं लखचोरा, 2006)। इन चिह्नक प्रणालियों में एक आदर्श चिह्नक की विशेषता यह होती है कि इसमें प्रभारी एलील के साथ अनेक गिने जाने योग्य एवं अति बहुरूपी लोसाई होने चाहिए तथा यह पूरे जीनोम में सघनता से वितरित होना चाहिए। माइक्रोसैटेलाइट चिह्नकों में यह सारे गुण विद्यमान होते हैं, इसीलिए आज लिंकेज मानचित्रण, फॉरेन्सिक जाँच, पितृत्व एवं संबंध निर्धारण तथा जनसंख्या आनुवंशिक अध्ययन से जुड़े हुए विविध विश्लेषणों में ये सबसे अधिक प्रयोग किए जाते हैं।

साठ के दशक के आखिरी वर्षो में सैटेलाइट शब्द का संबंध डीएनए से उस समय जुड़ा जब डीएनए का आइसोपिनिक सेन्ट्रीफ्यूगेशन करने पर यह एक मुख्य बैंड के साथ अनुचर बैंड के रूप में स्थापित हो गया। इनमे अनुचर बैंड को सैटेलाइट बैंड कहा गया क्योंकि यह सघन बैंड की बाहरी सीमा पर दिखाई दिया था। विश्लेषण करने पर यह पता चला कि ये सैटेलाइट बैंड लम्बे–लम्बे पुनरावृत्तीय डीएनए के अनुक्रम हैं जो लाखों प्रतियों में मौजूद होते हैं तथा हेट्रोक्रोमेटिन से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। रिएसोसिएशन अध्ययन के आधार पर यह पाया गया कि डीएनए का यह पुनरावृत्तीय आकार एक ही प्रजाति के जीवों एवं विभिन्न प्रजातियों में भिन्न–भिन्न होता है (ब्रुटलाग, 1980)। जीनोम में व्यवस्था के आधार पर पुनरावृत्तीय डीएनए को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है जैसे इन्टरस्पर्सड या सीधे क्रमबद्ध परिपाटी में व्यवस्थित अग्रानुक्रम रूप में व्यवस्थित किए गए पुनरावृत्तीय तत्व ही जीनोम में पाए जाने वाली पुनरावृत्तियों के सबसे प्रचुर वर्ग का निर्माण करते हैं। पुरनावृत्तिय डीएनए के छोटे अनुक्रम जिसमे 15 या 15 से अधिक बेस होते हैं उन्हें मिनीसैटेलाइट कहते हैं (जैफरीज एवं सहयोगी, 1985)। 1980 के दशक के आखिरी वर्षो में इससे भी छोटे (दो से छः बेस तक) पुनरावृत्तीय डीएनए अनुक्रम पृथक किए गए जिन्हे माइक्रोसैटेलाइट का नाम दिया गया (लिट एवं लुटी, 1989)। अपनी खोज के बाद माइक्रोसैटेलाइट का प्रयोग मानचित्रण कार्यक्रमों, जनसंख्या वैज्ञानिकों द्वारा जनसंख्या आनुवंशिक सरंचना के अध्ययन में होता आया है।

माइक्रोसैटेलाइट के गुण और वितरण

डीएनए अनुक्रम की पुनरावृत्ति के आधार पर माइक्रोसैटेलाइट को मुख्यतः तीन वर्गों में बाँटा जाता है – शुद्ध, यौगिक तथा बाधित जैसे : –

शुद्ध : – CA CA CA CA CA CA CA CA

यौगिक : – CA CA CA CAGAGAGAGA

बाधित : – CACATTCACATTCATTCA

वितरण की सघनता विभिन्न प्रजातियों में भिन्न पाई जाती है जो कि एक लोकस प्रति 5 किलो बेस तक होती है। प्रत्येक लोकस पर डाइन्यूक्लियोटाइड

पुनरावृत्तियों की संख्या साधारणतः तीस से कम होती है। ट्राइन्यूक्लियोटाइड पुनरावृत्तियाँ पौधों और जन्तुओं दोनो में पाई जाती है तथा इनका संबंध कुछ मानव रोगों एवं कैन्सर से पाया गया है तथा आमतौर पर रीडिंग फ्रेम को बाधित किए बिना एक्सोन मे ही स्थित होते हैं। इनका यही गुण इन्हें जनसंख्या के आनुवंशिक अध्ययन के लिए असम्भाव्य उम्मीदवार बनाता है। इनकी पुनरावृत्तियों व बहुरूपों की औसत संख्या डाइन्यूक्सियोटाइड के बराबर ही होती है। टेट्रान्यूल्कियोटाइड पुनरावृत्तियों में जीएटीए तथा जीएटीए ही सबसे अधिक पाए जाते हैं। जीएटीए/ जीएसीए पुरावृत्तियाँ अत्याधिक बहुरूपी होते हैं और आमतौर पर यौगिक या बाधित विस्तार के रूप में पाए जाते हैं। यूकेरयोटिक डीएनए में माइक्रोसैटेलाइट बहुधा व क्रमरहित होते हैं। मानव जीनोमिक डीएनए में औसतन हर छः बेस पेयर पर एक माइक्रोसैटेलाइट होता है।

जिन जीवों का जीनोमिक मानचित्रण या डीएनए अनुक्रम डाटा उपलब्ध हो उनमे माइक्रोसैटेलाइट का लक्षण निर्धारण करना सरल होता है। परन्तु जिन जीवो में इस तरह की सूचनाऐं उपलब्ध नहीं होती उनमें माइक्रोसैटेलाइट लक्षण–निर्धारण की प्रक्रिया अति जटिल हो जाती है क्योंकि इसमे फ्लैंकिग अनुक्रमों को विशिष्ट लोकस के लिए पीसीआर पराक्षर के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

माइक्रोसैटेलाइट की उत्पत्ति

पुनरावृत्तीय डीएनए जीनोमिक डीएनए के समानुपात होता है। ये पुनरावृत्तीय अनुक्रम अपने आप को बनाए रखने के लिए जीनोम के भीतर ही रेपलीकेट करता रहता है जिस कारण प्रायः इन्हे स्वार्थी डीएनए कहा जाता है। अनेक आनुवंशिक तंत्र जैसे रेप्लीकेशन स्लिपेज, रोलिंग सर्कल विस्तारण, असमान क्रॉसिंग ओवर तथा म्यूटेशन आदि की पुनरावृत्ति इकाइयों को डीएनए बेस की प्रतिस्थापना द्वारा प्रभावित कर सकते हैं। कुछ रोगजनक बैक्टीरिया से माइक्रोसैटेलाइट की भूमिका को विकासवादी अनुकूलन माना जाता है (मोक्सन एवं विल्स, 1999)। मानव जाति मे माइक्रोसैटेलाइट दुर्लभ तंत्रिका–तंत्र संबंधी रोगों के साथ जुड़े हुए जाने गए हैं। इस प्रकार के अधिकतर रोगजनक माइक्रोसैटेलाइट जीन के भीतर पोलीग्लूटामिन की कोडिंग में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए हंटीगंटन रोग में एक स्वस्थ जीन में लगभग 10–30 ग्लूटामीन अवशेषो के लिए ट्रिप्लेट पुनरावृति माइक्रोसैटेलाइट कोडिंग होती है जबकि एक अस्वस्थ जीन में 36 या अधिक ग्लूटामीन अवशेषों के लिए माइक्रोसैटेलाइट कोडिंग होती है। अभी तक माइक्रोसैटेलाइट की उत्पत्ति एवं विकास की स्पष्ट समझ उपलब्ध नहीं है। पुनरावृत्तियों की संख्या एक ईकाई के घटने या बढ़ने से प्रभावित होती है पर कभी – कभी एक से अधिक ईकाइयाँ भी पुनरावृत्तियों की संख्या में बदलाव ला सकती हैं। ऐसा माना जाता है कि सरल पुनरावृत्तियां मुख्यतः स्लिपड स्ट्रैण्ड मिसपेयरिंग (मोक्सन एवं विल्स, 1999) या प्रविष्टि या प्रतिस्थापन द्वारा (झू एवं सहयोगी, 2000) उत्पन्न होती हैं।

स्लिपड स्ट्रैण्ड मिसपेयरिंग

इस प्रक्रिया में डीएनए प्रतिकृति के दौरान माइक्रोसैटेलाइट पुनरावृत्तियों की संख्या बढ़ जाती है या घट जाती है। माइक्रोसैटेलाइट पुनरावृत्तियों की संख्या में बढ़ोतरी तब होती है जब स्लिपेज किसी नव–निर्मित स्ट्रैण्ड पर इसके टेम्पलेट स्ट्रैण्ड के साथ जुड़ने को होती है और डीएनए पोलीमरेज गैप को भरने के लिए न्यूक्लियोटाइड जोड़ देता है, इस प्रकार स्ट्रैण्ड की एक पुनरावृत्ती द्वारा बढ़ोतरी हो जाती है। पुनरावृत्तियों की संख्या घटती तब है जब पुराना या टेम्पलेट स्ट्रैण्ड स्लिप हो जाता है, परिणामतः रिपेयर करने वाले एन्जाइम एक पुनरावृत्ति को मिटा देते हैं (मोक्सन एवं विल्स, 1999)। डीएनए पोलीमरेज में स्लिपेज की या उन टेम्पलेट की दर बहुत ज्यादा होती है जिनमें इन–वाइवो अवस्था में सरल पुनरावृत्तियाँ होती हैं परन्तु इन त्रुटियों में से अधिकतर सेलुलर मिसमैच रिपेयर प्रणाली द्वारा ठीक की जाती है। कुछ मानव रोगों में

पाई गई सरल पुनरावृत्तियों की अस्थिरता या तो डीएनए पोलीमरेज स्लिपेज की ज्यादा दर या मिसमैच रिपेयर की घटती कार्यक्षमता के परिणाम स्वरूप हो सकती है।

अंतर्वेषण और प्रतिस्थापन

डीएनए पोलीमरेज की स्लिपेज डीएनए प्रतिकृति के दौरान क्रमबद्ध पुनरावृत्तियों की मिसपेयरिंग पर निर्भर करती है, इस प्रकार क्रमबद्ध पुनरावृत्तियों के कम होने की अवस्था में इसके होने की सम्भावना नहीं होती। स्लिपेज म्यूटेशन के अध्ययन यह दर्शाते हैं कि ये बड़ी पुनरावृत्तियों वाले लोसाइ में आमतौर पर ज्यादा होते हैं। पाँच से कम पुनरावृत्तियों वाले लोसाइ बहुत ही कम बहुरूपी होते हैं। यदि ये कुछ ऐसे म्यूटेशन ग्रहण कर लेते हैं जो पुनरावृत्तियों की संख्या बढ़ा दे तो इनका बहुरूपी स्तर बढ जाता है (झू एवं सहयोगी, 2000)। लम्बी पुनरावृत्तियों पर स्लिपेज को होने देने के लिए उन छोटी पुनरावृत्तियों जिनसे लम्बी पुनरावृत्तियाँ विकसित हुई, पर स्लिपेज के अतिरिक्त कोई दूसरा तन्त्र होना चाहिए। इससे पहले कि स्लिपेज हो पुनरावृत्तियों की न्यूनतम संख्या एकाएक होने वाली म्यूटेशनों जैसे प्रतिस्थापन के द्वारा प्राप्त हो जानी आवश्यक है। माइक्रोसैटेलाइट अनुक्रम स्वाभाविक अंतर्वेषण या विलोपन म्यूटेशनो और गैर–ट्रिप्लेट माइक्रोसैटेलाइट के प्रति असाधारण रूप से कमजोर होती हैं और जब ये कोडिंग अनुक्रम में स्थित होती हैं तब इनसे यह आशा की जाती है कि ये फ्रेमशिफ्ट म्यूटेशनो को उच्च आवृति पर उत्पन्न करती रहें। विलोपन अंतर्वेषण से अधिक स्वाभाविक होते हैं और नई दो पुनरावृत्तियाँ लोसाई कि प्रमुख स्रोत होती हैं (झू एवं सहयोगी, 2000)।

विभिन्न प्रजातियों में माइक्रोसैटेलाइट एलीलों के आकार वितरण की तुलना करने पर यह पाया गया कि जिस प्रजाति से माइक्रोसैटेलाइट प्राप्त किया गया उसमे एलील आकार प्रायः निकट संबंधी प्रजातियों में पाए गए एलील से बड़ा होता है (एलेग्रेन एवं सहयोगी, 1995)। ये अवलोकन या तो विभिन्न प्रजातियों के भीतर हो रहे दिशात्मक विकास का (क्राफर्ड एवं सहयोगी, 1998) या अनुक्रम और संभंव प्राइमर जोड़ी विकास के लिए किए गए क्लोनो के चुनाव में एक प्रतीति पूर्वाग्रह का परिणाम हो सकता है। हाल ही में कोशिकीय मिसमैच रिपेयर जीन में भी माइक्रोसैटेलाइट की उपस्थिति की रिपोर्ट प्रकाश में आई है। यह एक विरोधाभास प्रतीत होता है क्योंकि यह जीन माइक्रोसैटेलाइट में म्यूटेशनों को सीमित करता है। रिपेयर जीन में ऐसे माइक्रोसैटेलाइट संभवतः एक ऐसे आनुवंशिक स्विच का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अनुकूलन म्यूटेशन दर को विकासवादी समय में व्यवस्थित होने की अनुमति देता है। ऐसे अनुमान लगाए गए हैं कि माइक्रोसैटेलाइट 103 से 105 म्यूटेशन प्रति जननकोश की दर से म्यूटेट होते हैं।

माइक्रोसैटेलाइट चिन्हको के उपयोग

आणविक आनुवंशिक अध्ययनों की विस्तृत श्रेणी जिसमें आनुवंशिक लिंकेज मानचित्रों की स्थापना करना, संभोग प्रणालियों का विश्लेषण, जनसंख्या सरंचना और जनसंख्याओं में जातिवृत्तीय संबंधो का निर्माण आदि सम्मिलित है, के लिए वर्तमान मे माइक्रोसैटेलाइट चिन्हक सबसे ज्यादा पसन्द किए जाते हैं। इन चिह्नकों का प्रयोग आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण लक्षणो एवं रोग प्रतिरोधक गुणों के लिंकेज विश्लेषण के लिए भी किया जाता है।

(क) लिंकेज मानचित्रण

लिंकेज विश्लेषण यह जानने के लिए किया जाता है कि दो आनुवंशिक लोसाई एक ही गुणसूत्र पर हैं या नहीं। माइक्रोसैटेलाइट या एसटीआर वाले संदर्भ आनुवंशिक लिंकेज मानचित्रो में भारी सुधारों के कारण अनेक प्रजातियों में सफल लिंकेज अध्ययनो की संख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है (फ्राइज एवं सहयोगी, 1989)। मानव जाति का आनुवंशिक मानचित्र बनाने के लिए कुल 5264 माइक्रोसैटेलाइट का प्रयोग किया गया है। माइक्रोसैटेलाइट चिह्नको का प्रयोग करके तैयार किए गए गाय के विस्तृत फिजिकली एंकरड लिंकेज मानचित्र की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई है (बिशप एवं सहयोगी, 1994)। इसके

अतिरिक्त इन चिह्नकों का गाय के सिन्टेनी मानचित्रण में भी प्रयोग होता है। भेड़ के लिंकेज मानचित्रों के विकास में भी माइक्रोसैटेलाइट का बहुत बड़ा हाथ योगदान रहा है।

(ख) पितृत्व निर्धारण

हाइपरवेरिएबल अनुक्रम की खोज द्वारा पितृत्व पहचान या पितृत्व परीक्षण में माइक्रोसैटेलाइट टाइपिंग का प्रयोग एक साधन के रूप में किया जा सकता है। कृत्रिम गर्भाधान, सन्तान परीक्षण कार्यक्रमों और पितृत्व संबंधी मतभेदों के निपटारे में पहचान परीक्षण और पितृत्व निर्धारण बहुत उपयोगी होते हैं। गौवंश में व्यक्तिगत पहचान के लिए तीन प्रोब $(\text{जीटीजी})_5$, $(\text{जी टी})_8$ और $(\text{जी जी ए टी})_4$ की पहचान की गई है तथा इन्हें विकसित किया गया है। (टी जी)n प्रोब का प्रयोग घोड़े की चार नस्लों में पहचान परीक्षण के लिए किया गया है। गौवंश में पितृत्व परीक्षण के लिए माइक्रोसैटेलाइट लोसाई से बहुत ही विस्तृत रूप में काम लिया गया है।

(ग) नस्ल सीमाकंन एवं जातिवृत्तीय अध्ययन

विभिन्न नस्लों में आनुवंशिक विविधता निर्धारण करने के लिए माइक्रोसैटेलाइट चिह्नकों का प्रयोग बहुत ही सफल रहा है। सरंक्षण कार्यक्रमों के विकास के लिए नस्लों का गुण–निर्धारण करना इसलिए आवश्यक होता है ताकि निर्धारित किया जा सके कि कौन सी नस्ल का संरक्षण होना चाहिए। गौवंश की विभिन्न नस्लो में आनुवंशिक विविधता का आंकलन करने में माक्रोसैटेलाइट का प्रयोग सफल रहा है। गौवंश के अतिरिक्त दूसरी प्रजातियों कि नस्लों में संबंधो का भी अनुमान लगाया गया है जैसे कुत्ता, बकरी, घोड़ा और गधा। जनसंख्याओं में जातिवृत्तीय संबंधो को दोबारा निर्मित करने के लिए माइक्रोसैटेलाइट लोसाई को सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। जनजातीय पशुओं में जातिवृत्तीय संबंधो का आंकलन भी 20 माइक्रोसैटेलाइट चिह्नकों का प्रयोग करके किया जा चुका है। इस प्रकार निकट संबंधी जनसंख्याओ में विकासवादी संबंधों की व्याख्या के लिए माइक्रोसैटेलाइट डीएनए बहुत ही उपयोगी है। चिह्नक प्रणाली के रूप में माइक्रोसैटेलाइट डीएनए स्तर पर उच्च स्तर की बहुरूपता दर्शाते हैं, संपूर्ण जीनोम में सर्वत्र पाए जाते है, मेंडल के विरासत सिद्धांतों की पालना करते हैं तथा वातावरण संबंधी कारकों से अप्रभावित होते हैं, इसलिए ये दूसरी चिह्नक प्रणालियों से श्रेष्ठ होते हैं।

संदर्भ

अरोड़ा आर. एवं लखचौरा बी.डी. 2006. इण्डियन जर्नल ऑफ एनीमल रिसर्च 40(1):1–8.

बिशप एम.डी. एवं सहयोगी. 1994. जेनेटिक्स 136:619–639.

ब्रुट्लॉग डी.एल. (1980). एन्वल रिव्यु ऑफ जेनेटिक्स 14:121–144

क्रॉफर्ड ए.एम. एवं सहयोगी. 1998. जर्नल ऑफ मोलिक्युलर इवोल्युशन 46:256–260.

एलेग्रेन एच. एवं सहयोगी. 1995. नेचर जेनेटिक्स 11:360–362.

फ्राइज आर. एवं सहयोगी. 1989. एनीमल जेनेटिकस 20:3–29.

जेफरीज ए.जे. एवं सहयोगी.1985. नेचर 314:67–73.

लिट एम. एवं लुटी आइ.ए. 1989. अमेरिकन जर्नल ऑफ ह्युमन जेनेटिक्स 44:397–401.

मोक्सन ई.आर. एवं विल्स सी. 1999. साईस ऑफ अमेरिका 94–99.

झु वाई. एवं सहयोगी. 2000. जर्नल ऑफ मोलिक्युलर इवोल्युशन 50:324–338.

पशुओं की प्रजनन सम्बन्धी समस्याएं एंव उनका निवारण

पुष्प राज शिवहरे, एन के वर्मा, रेखा शर्मा, सोनिका अहलावत एवं प्रियंका शर्मा

भाकृअनुप– राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा) 132001

प्रजनन सम्बन्धी समस्याएँ जैसे कि बाँझपन एवं गर्भपात पशुपालन उद्योग में हानि की मुख्य वजह हैं, इन समस्याओ के होने के वैसे तो बहुत से कारण है लेकिन मुख्य कारण रोगाणु है। पशु स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या जैसे कि कृमि बोझ, लीवर फ्लूक, फुट रॉट इत्यादि की वजह से पशु का वजन गिरने लगता है जिसकी वजह से प्रजनन दर मे गिरावट आ जाती है। बीमारी का पता लगाकर उसकी रोकथाम एंव चिकित्सा कराना पशु कल्याण का एक अत्यंत महत्वपूर्ण हिस्सा है। लेकिन यह अत्यंत ही कठिन है की हर बार जब पशु बीमार हो तो तुरंत ही इलाज संभव हो सके। बहुत सी प्रजनन सम्बन्धी बीमारियाँ एक जैसे ही लक्षण दिखाती हैं, जैसे कि गर्भपात एंव ब्यांत कालीन शिशु मृत्यु दर। अतः किसी भी स्थिति में पशु के बीमार होने पर तुरंत पशु चिकित्सक की सलाह लें। प्रभावी प्रबंधन के लिए आवश्यक है कि नये, उभरते हुए या बाहर से आए किसी भी रोग का तुरंत निवारण किया जाये। पशुओं में सामान्यतः यह देखा गया है कि प्रजनन अंगों में बीमारियाँ धीरे–धीरे विकसित होती हैं और यह पाया गया है कि बीमारी से ग्रस्त पशु मरता नहीं है, और कई बार तो बीमार भी नहीं दिखता है (समान्यतः नर पशुओं में)। वो पशु जो बीमारी के लक्षण नहीं दिखाते हैं वे पशु समूह के लिए बीमारी फैलाने का एक मुख्य कारण होते हैं। प्रजनन सम्बन्धी बीमारियों से बचने के लिए यह जरुरी है कि उच्च प्रबंधन तकनीकों का उपयोग किया जाये। बीमार पशुओं को तुरंत अलग कर समुचित इलाज किया जाये। पशु फार्म प्रबंधक को पशुचिकित्सक के हमेशा संपर्क में रहना चाहिए। प्रजनन सम्बन्धी बीमारियों को निम्न तरह से समझा जा सकता है।

(अ) संक्रामक प्रजनन रोग

महत्वपूर्ण संक्रामक रोग जिनकी वजह से कृषक को आर्थिक हानि हो सकती है निम्न है:

1. ब्रूसेलोसिस
2. विब्रियोसिस
3. ट्राईकोमोनीयासिस
4. कैम्पाइलोबैक्टीरियोसीस

तालिका 1. बीमारियां एवं उनके कारक

क्रम संख्या	बीमारी	कारक (जीवाणु/ बिषाणु/ फंगस)
1	ब्रूसेलोसिस	*Brucella abortus*
2	विब्रियोसिस	*Campylobacter fetus venerealis*
3	ट्राईकोमोनीयासिस	*Trichomonas fetus*
4	कैम्पाइलोबैक्टीरियोसीस	*Campylobacter fetus intestinals*
5	लेप्टोस्पाईरोसिस	*Leptospira pomona, Leptospira hardjo, Leptospira grippotyphosa*
6	रेड नोज रोग (आई बी आर इन्फेक्शन)	Bovine Herpesvirus-1 (BHV-1)
7	बोवाइन वायरल डायरिया (बी वी डी इन्फेक्शन)	Bovine Virus Diarrhea (BVD) virus
8	सल्मोनोलोसिस	*Salmonella* spp (*Salmonella dublin*)
9	माइकोलाज्मोसिस	*Ureaplasma diversum*
10	एसपरजिलोसिस	*Aspergillus* sp

5. लेप्टोस्पाईरोसिस
6. रेड नोज रोग (आई बी आर इन्फेक्शन)
7. बोवाइन वायरल डायरिया (बी वी डी इन्फेक्शन)
8. साल्मोनेलोसिस
9. माइकोलाज्मोसिस
10. एसपरजिलोसिस

1. ब्रूसेलोसिस (वैंग रोग)

अधिकतर राज्य अपने पशु सम्पदा को इस रोग से मुक्त करने हेतु अग्रसर हैं। लेकिन ब्रूसेलोसिस अभी भी कुछ क्षेत्रों मे गर्भपात और बाँझपन का एक मुख्य कारण है। यह आवश्यक नहीं है कि ब्रूसेलोसिस से संक्रमित गाय का गर्भपात ही हो, उनमे निर्बल बछडा उत्पादन, जेर का बाहर न आना, एंव अगली बार प्रजनन ठीक से ना होना जैसी समस्यायें भी आ जाती हैं। ब्रूसेला से संक्रमित गाय हर पहलू में सामान्य सी दिखती है, और जब वह ब्याती है तो जेर व स्रावित द्रवित पदार्थो के साथ लाखों ब्रूसेला जीवाणु भी फैलाती है। स्रावित द्रवित पदार्थ जमीन, व् चारा आदि को संक्रमित कर देता है, जिससे दूसरे पशुओं के संक्रमित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। ज्यादातर संक्रमण पाचन तंत्र के माध्यम से होता है लेकिन यह संक्रमण त्वचा एंव आँख के माध्यम से भी हो सकता है। दूषित चारा, बिस्तर, पानी इत्यादि कुछ दिन से लेकर कुछ हफ्ते तक संक्रमित रह सकते हैं। यह सब परिसर पर्यावरण एवं प्रबंधन पर निर्भर करता है।

गर्भपात का समय– गर्भावस्था के छठे से नौवें महीने के दौरान

रोग विवरण/लक्षण – इस रोग में 80% तक मामलों में गर्भपात हो सकता है (ज्यादातर पशुओं में एक बार) एवं बाँझपन की समस्या, जेर रुकना इत्यादि अन्य लक्षण हैं।

बचाव के उपाय:–

– केवल मादा पशुओं में 3–12 महीने की आयु पर टीकाकरण (स्ट्रेन–19 वैक्सीन द्वारा)
– संक्रमित पशु अलग रखें
– कम जगह पर ज्यादा पशु न रखें

2. विब्रियोसिस

विब्रियोसिस एक प्रजनन जनित रोग हैं। जो मुख्यतः बाँझपन करता है। लेकिन कभी–कभी गर्भपात भी करता है। यह जीवाणु जनित बीमारी है और यह जीवाणु मुख्यतः सांड की शिशन के मुख पर खुली त्वचा (चमड़ी) की दरारों में पाया जाता है यह चार वर्ष या उससे अधिक उम्र के सांड़ो में स्थापित होता है। विब्रियोसिस प्रजनन के दौरान गाय को संक्रमित सांड़ से फैलता है। सांड भी संक्रमित गाय के प्रजनन से संक्रमित हो सकता है। यदि सांड़ का इलाज न हो तो यह संक्रमण फैलाने का एक मुख्य कारण हो सकता है।

लक्षण

– मादा पशुओं में गर्भशोथ (मेंट्राईटिस)
– बाँझपन
– गर्भ का न ठहरना या गर्भ मे बच्चे की मृत्यु

गर्भपात का समय – गर्भावस्था के प्रथम तीन महीनो में

बचाव के उपाय – सांड़ो व् गायों में प्रजनन के साढ़े चार महीने पहले पहला टीका तथा उसके10 दिन बाद दूसरा टीका। बाद में हर साल जीवाणुनाशक दवाओं से उपचारित वीर्य द्वारा कृत्रिम गर्भाधान।

3. ट्राईकोमोनियासिस

यह प्रोटोजोवा जनित बीमारी है जो प्रजनन से फैलती है। यह रोग संक्रमित सांड़ से मादा पशु के प्रजनन अंगो में फैलता है। जिसकी वजह से गर्भपात, बांझपन, गर्भ में शिशु मृत्यु और जिसके फलस्वरूप पशु गर्मी मे आ जाता है।

लक्षण

– बांझपन, मवादयुक्त गर्भाशय प्रदाह

- वृद्ध पशुओं में गर्भपात दर अधिक
- प्रोटोजोवा, सांड़ द्वारा सामान्य प्रजनन प्रक्रिया से मादा पशु में पहुँचते हैं। कृत्रिम गर्भधान द्वारा रोग का फैलाव नहीं के बराबर है।
- सांड़ लंबे समय से तक संवाहक (कैरियर) रह सकते हैं

गर्भपात का समय – द्वितीय त्रेमास (2 से 4 महीने)

बचाव के उपाय–

- संक्रमित सांड़ का उपयोग न करें
- पहला टीका प्रजनन से 60 दिन पहले तथा दूसरा 30 दिन पहले और बाद में हर साल।
- 90 दिनों के लिए प्रजनन से आराम देने से भी यह स्वतः नियंत्रित हो जाता है.

4. कम्पाइलोबैक्टीरियोसिस

यह जीवाणु जनित रोग है जो कम आयु में डायरिया करता है जबकि वयस्क मादा पशुओ में गर्भपात कर सकता है। यह मल–मुख के माध्यम से फैलता है।

गर्भपात का समय – गर्भावस्था के चौथे व् नौवें माह के दौरान

लक्षण

- बांझपन
- कभी–कभी गर्भपात
- जीवाणु समान्यतः आंतो में पाए जाते हैं

बचाव का उपाय

- इलाज सामान्यतः आवश्यक नहीं है
- 90 दिन के लिए प्रजनन आराम से नियंत्रित हो जाता है

5. लेप्टोस्पाइरोसिस

लेप्टोस्पाइरोसिस सामान्यतः दक्षिण भारत में बगैर टीकाकरण वाले झुंडो में पाया जाता है। ये प्रायः रिपीट ब्रीडिंग, कम तीव्रता का गर्भाशय संक्रमण, गर्भपात, थनैला जैसी समस्याएँ करता है। सामान्य गायों में संक्रमण, संक्रमित गायो कि मूत्र की बूंदों से, आँख, नाक, मुंह की श्लेषमा झिल्ली के साथ संपर्क में आने पर फैलता है। इस रोग से प्रभावित गायों का ब्यांत अन्तराल बढ़ जाता है।

गर्भपात का समय – गर्भावस्था के अंतिम त्रेमास में

लक्षण

- सामन्यातः कोई विशेष लक्षण नहीं
- कभी–कभी बुखार, रक्ताल्पता एवं थनैला
- गर्भपात– 5 से 40% तक

बचाव व उपाय

- बैक्टेरिम टीकाकरण प्रत्येक 6 मास के अन्तराल में
- मल व मूत्र का समुचित निकास
- यह रोग चूहो द्वारा फैलता है, अतः चूहों का पशु परिसर में प्रवेश पर नियंत्रण के लिए उचित प्रबंध होना चाहिए।

6. रेड नोज रोग (आई. बी. आर. वाइरस इन्फैक्शन)

यह बिषाणु जनित रोग जो अल्प आयु पशु व वयस्क पशु दोनों को प्रभावित करता है। यह मुख्यतः श्वसन तंत्र को प्रभावित करता है। अधिकतर गर्भपात पशु झुंड में संक्रमण फैलने के एक सप्ताह बाद ही होने लगता है।

गर्भपात का समय – गर्भवस्था के चौथे महीने से ऊपर

लक्षण

- श्वशन/नेत्र झिल्ली रोग इत्यादि के रूप में हो सकते हैं
- कई बार गायों में कोई लक्षण नहीं दिखता
- संक्रमित गायों से रोग का फैलाव होता है
- 5–60% गर्भपात दर है.
- लेकिन एक बार संक्रमण होने के बाद पशु रोगरोधी हो जाता है

बचाव – 6 से 8 महीने की आयु पर टीकाकरण

7. बोवाइन वायरल डायरिया (बी. वी. डी. वाइरस इन्फैक्शन)

बी. वी. डी. वाइरस इन्फैकशन की वजह से पशुओ में कई तरह की समस्याएं आती है। यह संक्रमण माता के रक्त प्रवाह से गर्भाशय में शिशु में पहुँच जाता है।

गर्भपात का समय – गर्भवस्था के प्रारम्भ में 4 महीने तक

लक्षण

- गर्भावस्था में संक्रमण होने के बाद भ्रूण विकास दर में कमी
- प्रारंभ में बुखार
- जन्मे बच्चों में मस्तिष्क का विकास कम होना
- संक्रमण छूत से फैलता है

बचाव के उपाय

- 8 महीने के आयु पर टीकाकरण
- गर्भावस्था में टीका न लगायें

8. साल्मोनेलोसिस

गर्भपात का समय – गर्भावस्था में कभी भी (ज्यादातर 6–9 वे महीने में)

लक्षण

- कभी–कभी कोई लक्षण नहीं दिखता
- कभी–कभी बुखार एवं दस्त
- एकाध पशु में गर्भपात
- इस रोग के जीवाणु मल/मूत्र/दूध में स्रावित होते हैं
- संक्रमित पशु/पक्षी रोग को फैलाते हैं

बचाव व उपाय

- संक्रमित पशु को अलग कर दें
- बैक्टिरियन दवा का प्रयोग करें

9. माइकोप्लाजमोसिस

गर्भपात का समय – गर्भवस्था में कभी भी लेकिन अधिकतर समय अंतिम त्रैमास में

लक्षण

- मुख्यतः यह बीमारी बाँझपन का कारण है। गर्भपात कम संख्या में पाये जाते है। गर्भपात से पहले मवाद युक्त प्रदाह निकलता है।
- जीवाणु वीर्य व अन्य स्त्रावों के माध्यम से फैलता है।

बचाव के उपाय

- कृत्रिम गर्भाधान के लिए जीवाणु मुक्त वीर्य का प्रयोग करें
- प्रभावित पशुओं को झुण्ड से अलग कर दें
- एंटीबायोटिक दवाओं का प्रयोग पशुचिकित्सक की सलाह पर करें

10. एस्परजिलोसिस

यह फफूंद जनित रोग है। यह मुख्यतः श्वशन तंत्र को प्रभावित करता है। कई बार यह कोई भी लक्षण नहीं दिखाता है, लेकिन गर्भपात कर देता है।

गर्भपात का समय – सामान्यतः गर्भावस्था के 6–9 महीने में

- जाड़े व् बसंत ऋतु में (जनवरी से मार्च तक) ज्यादातर पशु इस रोग से प्रभावित होते हैं

लक्षण

- प्रारम्भिक अवस्था में कोई विशेष लक्षण नहीं दिखता लेकिन पुराने रोगी स्थाई रूप से बाँझ हो जाते हैं।
- गर्भपात कम संख्या में (5–10%) पाया गया है।

बचाव के उपाय – यह फफूंद गीले या नम भूसे में पाया जाता है। इसलिए गर्भपात में फफूंद लगा भूसा न खिलायें।

(ब). पोषाहार प्रजनन रोग

इस तरह की समस्या विशिष्ट पोषक तत्वों की कमी, पोषण असंतुलन, चयापचय मे गड़बड़ी की वजह से हो सकती है। इस प्रकार के रोगों से कृषक को महत्वपूर्ण आर्थिक हानि हो सकती है। निम्न रोग प्रमुख पोषण रोगों में शामिल हैं।

1. मिल्क फीवर
2. किटोसिस
3. फॉस्फोरस खनिज की कमी (फॉस्फोटीमिया)

1. मिल्क फीवर

यह बीमारी प्रायः ज्यादा दूध देने वाली गायों में पाई जाती है और विशेषतः इसमें रक्त में कैल्शियम की मात्रा कम होती जाती है। यह ज्यादातर दुग्ध उत्पादन के प्रारम्भिक दिनो मे होती है, क्योंकि दुग्ध उत्पादन के लिए जरुरी कैल्सियम की मांग कैल्शियम भंडारण जुटाने के लिए शारीरिक क्षमता से अधिक हो जाती है। बुखार शब्द इस बीमारी के नाम में एक मिथ्या है, आमतौर पर तापमान सामान्य से कम रहता है। कैल्सियम की कमी की वजह से मांसपेशियों का कार्य बाधित होने लगता है, भूख कम हो जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है एवं कभी–कभी ह्रदयघात भी हो सकता है।

बचाव के उपाए

आमतौर पर कैल्शियम ही इसका मुख्य इलाज है। कैल्शियम नसों के माध्यम से या मांस में या त्वचा के नीचे, आदि मार्गो से दिया जाता है।

2. किटोसिस

यह वयस्क मवेशियों की एक आम बीमारी है। जो डेयरी गाय जल्दी दुग्ध उत्पादन में आ जाती हैं उनमें ये मुख्यतः पायी जाती है। इस बीमारी में पशु विशेषतः अवसाद में रहता है एवं खाना बंद कर देता है। भूख न लगने के आलावा अन्य लक्षण हैं: दिमाग का सही काम न कर पाना, असामान्य चाट (पाईका), लड़खड़ाकर चलना, असामान्य चाल, असामान्य रेंकना इत्यादि। यह समस्या मुख्यतः अधिक उत्पादन करने वाले डेयरी गायों में पाई जाती है.

बचाव के उपाय

– किटोसिस के उपचार में मुख्यतः रक्त में ग्लूकोज का स्तर सामान्य करना एंव सीरम कीटोन सांद्रता को कम करना होता है।

– 50% डेक्स्ट्रोज की 500 मि.ली. मात्रा नस के माध्यम से देना एक कारगर चिकित्सा है।

3. (फॉस्फोरस खनिज की कमी) फॉस्फोटीमिया

फॉस्फोरस की कमी आमतौर पर अपर्याप्त पोषण या राशन में फास्फेट्स की कमी की वजह से होती है। यह समस्या अधिक उत्पादन वाली गायों की प्रमुख समस्या है।

बचाव के उपाय

– पर्याप्त फास्फोरस खनिज पशुआहार के साथ देना एक प्रभावी इलाज है

– नसों के माध्यम से भी फास्फोरस दिया जाता है.

प्रजनन सम्बन्धी बीमारियाँ प्रत्येक डेरी फार्म के लिए हानि का मुख्य कारण है। सही प्रबंधन व पशु चिकित्सक की मदद से हम इस समस्या से काफी हद तक निजात पा सकते हैं।

चित्र 1. एबोर्टेड फीटस

चित्र 2. मिल्क फीवर से ग्रसित पशु

गर्भित पशु की देखभाल

संजय कुमार मिश्र[1] एवं सर्वजीत यादव[2]

1. पशु चिकित्सा अधिकारी, चौमुहाँ, मथुरा 2. निदेशक प्रसार, उ.प्र.पं. दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा।

पशु के गर्भित होने के साथ ही गर्भाशय में बढ़ रहे भ्रूण को खुराक (आहार) की आवश्यकता महसूस होती है। यदि पशु स्वस्थ और सुदृढ़ है तो उसके अन्दर पल रहा भ्रूण भी स्वस्थ रहेगा और उसकी वृद्धि समुचित रूप से होगी।

प्रायः यह देखने में आया है कि पशु में कृत्रिम गर्भाधान होते ही पशुपालक इस आशय से पशु की खुराक जैसे आहार, दाना आदि या तो कम कर देते हैं या बन्द कर देते हैं कि यदि मादा को दाना इत्यादि खिलाया गया तो बच्चा बड़ा हो जायेगा और ब्यांत के अन्त में अत्यन्त मुश्किल पेश आयेगी। परन्तु यह विचार पूर्णतः निरर्थक है। स्वस्थ एवं सुडौल पशु स्वस्थ एवं सुडौल बच्चे को जन्म देता है, क्योंकि स्वस्थ पशु में मांसपेशियाँ बच्चे को निकालने हेतु समुचित संकुचन पैदा करती हैं। यदि पशु कमजोर होगा तो बच्चा अपनी माँ के रक्त से समुचित आहार ले लेता है, जिससे बच्चा तो बढ़ता रहता है परन्तु माँ को समुचित संतुलित आहार न मिलने के कारण वह कमजोर होती जाती है। जिसके फलस्वरूप पशु की मांसपेशियाँ कमजोर हो जाने से पशु की हड्डियाँ दिखने लगती हैं। कभी–कभी तो 7–8 महीने की गर्भावस्था से ही कमजोरी के कारण पशु निढ़ाल होकर लेट जाता है। कई बार तो पशु खड़ा होने में भी असमर्थ हो जाता है एवं गर्भाशय की माँसपेशियों की कमजोरी के कारण बच्चा योनिद्वार में फँस जाता है। समय पर चिकित्सीय सहायता उपलब्ध न होने पर पशु की मृत्यु भी हो जाती है।

गर्भावस्था में समुचित आहार की कमी के कारण ब्याने के पश्चात् दुग्ध उत्पादन में कमी आती है तथा पशु को दोबारा ग्याभिन होने के लिये पशुपालक को एक से डेढ़ वर्ष का इंतजार करना पड़ सकता है। जबकि स्वस्थ पशु जिसे गर्भकाल के मध्य पूर्ण संतुलित आहार दिया गया हो उसकी दुग्ध उत्पादकता भी अच्छी रहती है व ब्याने के 40–45 दिन बाद ही पुनः मद (हीट) में आ जाती है व गर्भधारण में भी कोई समस्या नहीं होती है।

अतः गर्भित पशु की देखभाल हेतु निम्नलिखित तथ्यों का विशेष ध्यान रखें:

1. मादा पशु को गर्भकाल में पूर्ण व संतुलित आहार देना चाहिये।
2. उचित मात्रा में (25–30 ग्राम) खनिज मिश्रण एवं नमक प्रतिदिन अवश्य दें।
3. पशु की पूर्ण साफ–सफाई का ध्यान रखना चाहिये।
4. यदि किसी सामान्य बीमारी का भी शक हो तो तुरन्त पशु चिकित्सक से निदान व उपचार करवाना चाहिये।
5. ब्याने में कोई परेशानी आये तो नजदीकी पशुचिकित्सक से तुरन्त सम्पर्क करें।
6. ब्याने के आधे घण्टे के भीतर नवजात बच्चे को खीस/पेवसी पिलाना चाहिये।
7. प्रसव के उपरान्त गाय/भैंस को दो–तीन बार काढ़ा (प्रति काढ़ा अलसी 200 ग्राम, अजवाइन 100 ग्राम, सौंफ 100 ग्राम, सौंठ 50 ग्राम, 5 लीटर पानी में खूब पकाकर उसमें एक किलो गुड़ मिलाकर) पिलायें। यह स्वास्थ्य के लिये उत्तम है।
8. 12 घण्टे तक जेर गिरने का इन्तजार करें अन्यथा पशु चिकित्सक को दिखाएं।
9. यदि पशु अधिक दुग्ध उत्पादन की क्षमता वाला है और वह गर्दन एक तरफ करके जमीन पर लेट

जाये व खड़ा न हो सके तो उसका इलाज अतिशीघ्र करायें।

बछिया / ओसर के स्वास्थ्य तथा संतुलित आहार का जन्म से ही समुचित ध्यान रखने से वह कम उम्र में ही गर्मी में आ जाती है तथा कृत्रिम गर्भाधान करवाने पर दो से ढ़ाई वर्ष में बच्चा देने योग्य हो जाती है। गर्भित पशु के गर्भ का विकास 6–7 माह के दौरान तीव्रगति से होता है। इसलिये निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये:

क. 6–7 माह के गर्भित पशु को चरने के लिये अधिक दूर तक नहीं ले जाना चाहिये व ऊबड़–खाबड़ रास्तों पर नहीं घुमाना चाहिये।

ख. गर्भित पशु यदि दूध दे रहा है तो गर्भावस्था के 7वें महीने के बाद दूध निकालना बन्द कर देना चाहिये।

ग. गर्भित पशु के उठने–बैठने हेतु पर्याप्त स्थान होना चाहिये। पशु जहाँ बँधा हो, उसके पीछे के हिस्से का फर्श आगे से कुछ ऊँचा होना चाहिये।

घ. गर्भित पशु को पोषक आहार की आवश्यकता होती है, जिससे ब्याने के समय दुग्ध–ज्वर जैसे रोग न हों तथा दुग्ध उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

ड. गर्भित पशु को प्रतिदिन निम्नवत् आहार की व्यवस्था करनी चाहिये।

हरा चारा	–	25 से 30 किलो
सूखा चारा	–	5 से 6 किलो
खली	–	1 किलो
खनिज मिश्रण	–	50 ग्राम
नमक	–	30 ग्राम

– गर्भित पशु को पीने के लिये 70–80 लीटर स्वच्छ व ताजा पानी प्रतिदिन उपलब्ध कराना चाहिये।

– पशु के प्रथम बार गर्भित होने पर 6–7 माह के बाद उसे दूध देने वाले अन्य पशुओं के साथ बाँधना चाहिये और शरीर, पीठ एवं थनों की मालिश करना चाहिये।

– ब्याने के 4–5 दिन पूर्व उसे अलग स्थान पर बाँधना चाहिये। ध्यान रहे कि स्थान स्वच्छ, हवादार व रोशनी युक्त हो। पशु के बैठने के लिये फर्श पर सूखा चारा/पुवाल आदि डालना चाहिये।

– ब्याने के 1–2 दिन पूर्व से पशु पर लगातार नजर रखनी चाहिये।

"गर्भित पशु की थोड़ी सी देखभाल
बचाए पशुधन और बनाए किसान को खुशहाल"

काम करने वाले पशुओं का आहार

सत्येन्द्र पाल सिंह[1], धर्वेन्द्र सिंह[1] एवं संजीव सिंह[2]
[1]राजमाता विजियाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय–कृषि विज्ञान केन्द्र, मुरैना–476001 (म. प्र.)
[2]भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा) – 132001

खेती में यंत्रीकरण के बाद भारवाहक पशुओं पर निर्भरता काफी कम हुई है। बावजूद इसके देश के कई हिस्सों में आज भी बैल, भैंसा, ऊंट, घोड़ा, खच्चर, गधा आदि खेती–बाड़ी में काम करने के अलावा अन्य भारवाहन का कार्य कर रहे हैं। अत:, भारवाहक पशुओं को उनके कार्य के आधार पर आहार देना जरूरी हो जाता है, जिससे उनसे पूरी क्षमता के अनुसार कार्य लिया जा सके और वह स्वस्थ भी बने रहें। भारत में पशुपालन कृषि का सहायक माना जाता है। ऊर्जा संकट के इस दौर में काम करने वाले पशु खासकर बैल आदि आज भी खेती और बोझा ढ़ोने के विभिन्न कार्यो को सम्पन्न करने के लिए प्रयोग में लाये जा रहे हैं।

काम करने वाले पशुओं का भी रखें ध्यान

काम करने वाले पशओं को आमतौर पर कृषि के उपोत्पाद खिलाकर ही रखा जाता है। इन पशुओं को काम करने की क्षमता को बढ़ाने की तरफ तथा उनकी संतुलित खिलाई–पिलाई की ओर नाम मात्र का ही ध्यान दिया जाता है। साथ ही जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि, सान्द्र भोज्यों की कमी और समुचित मात्रा में चारों का उत्पादन नहीं होना भी पशुओं के लिए समुचित भोजन उपलब्ध कराने में बाधा डालते हैं। ऐसी हालत में काम करने वाले पशुओं के लिए तो पोषक तत्व उपलब्ध करा पाना ही नहीं अपितु काम के आधार पर अनुरक्षण की पूर्ति भी कठिन हो जाती है। दूसरी तरफ अनुत्पादक पशुओं की संख्या में बढ़ोत्तरी के कारण काम करने वाले उन्नत पशुओं के लिए भोजन तथा भरपूर मात्रा में चारे की उपलब्धता में काफी कमी आ गई है।

आज खेती में मशीनीकरण का प्रभाव तेजी से बढ़ा है। ऐसे में काम करने वाले पशुओं की संख्या में भी गिरावट आई है। लेकिन जो काम करने वाले पशु हैं, उन्हें भरपूर मात्रा में समुचित और संतुलित आहार दाना–चारा नहीं मिल पा रहा है। काम करने वाले पशुओं को उनके कार्य की दक्षता के अनुसार आहार दिया जाये तो उनके कार्य करने की क्षमता में वृद्धि कर उनका बेहतर स्वास्थ्य बनाये रखा जा सकता है।

संतुलित आहार है जरूरी

चौबीस घंटों के दौरान पशु को जो आवश्यक तत्वों की विभिन्न मात्रा खिलाई जाती है उसे "आहार" कहते हैं। काम करने वाले पशुओं को पोषक तत्वों की आवश्यकता पशु का भार, काम करने के घंटे एवं कार्य की प्रवृत्ति के अनुसार होती है। हल्के, मध्यम एवं भारी कार्य के आधार पर ही काम करने वाले पशुओं का आहार निर्धारण किया जाता है। काम करने वाले पशुओं को कार्य की क्षमता के अनुरूप संतुलित राशन देना चाहिए। संतुलित राशन बनाते समय सर्वप्रथम पशु शरीर की आवश्यकता के अनुसार सभी पोषक तत्व जैसे– कार्बोहाइड्रेट, वसा या चिकनाई, प्रोटीन, खनिज तत्व, नमक आदि का समुचित समावेश होना चाहिए।

ऊर्जा एवं चिकनाई का होता है क्षरण

काम करने वाले पशुओं के आहार में अधिक ऊर्जा एवं चिकनाई वाले पदार्थो का अधिक मात्रा में सम्मलित होना आवश्यक है, क्योंकि कार्य करने के दौरान, काम करने वाले पशुओं के शरीर से ऊर्जा एवं वसा का क्षरण अधिक होता है। इसलिए काम करने वाले पशुओं का आहार निर्धारण करते समय कार्बोहाइड्रेट और वसा का प्रतिशत अधिक होना चाहिए। काम करने वाले पशुओं को दिया जाने वाला राशन दो भागों में बांटा जाता है–जीवन रक्षक राशन एवं कार्य करने की क्षमता के अनुसार राशन। यदि पशु कोई कार्य न करे तो भी जीवित रहने के लिए आवश्यक शरीर क्रियाओं जैसे श्वांस लेना आदि कार्यों में भी ऊर्जा खर्च होती है। जीवन रक्षक राशन इसी के लिए जरूरी होता है।

कार्य के अनुसार करें आहार का निर्धारण

काम करने वाले पशुओं विशेषकर बैल एवं भैंसा को कार्य करने के आधार पर तीन वर्गो में बांटा जाता है जैसे– साधारण कार्य, मध्यम कार्य, और अधिक कार्य करने वाले पशु। काम करने वाले पशुओं में साधारण कार्य का अर्थ है: चार घंटे बैलगाड़ी या तीन घंटे हल चलाना। मध्यम कार्य अर्थात् 4 से 6 घंटे कार्य करना तथा अधिक कार्य का अर्थ 6 घंटे से ज्यादा कार्य करने वाले पशुओं से होता है। काम करने वाले पशुओं को कार्य के घंटों एवं कार्य की प्रवृत्ति के अनुसार अतिरिक्त ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। क्योंकि, कुछ ऊर्जा शरीर की मांस पेशियों को चलाने में भी व्यय हो जाती है, अतः कार्यरत पशुओं जिनका शरीर भार लगभग 400 कि.ग्रा. होता है, पोषण सम्बंधी आवश्यकता उनके शरीर भार, कार्य की किस्म एवं अवधि पर निर्भर करती है। सामान्यतः इस आवश्यकता को निम्नवत पूरा करना चाहिए:

कम कार्य करने वाले पशु को 240 ग्राम एवं 4 किग्रा, मध्यम कार्य करने वाले पशु 280 ग्राम एवं 4.2 किग्रा एवं कार्य अधिक करने वाले पशु को 320 ग्राम एवं 4.5 किग्रा क्रमशः कुल पाचक प्रोटीन और कुल पाच्य पदार्थ खिलाना चाहिए।

तालिका 1. कार्य के आधार पर ऊर्जा की आवश्यकता

कार्य का प्रकार	अवधि (घंटे)	शरीर भार (ग्राम)	कुल पाचक प्रोटीन (ग्राम)	कुल पाच्य प्रोटीन (किग्रा)
साधारण कार्य	3 से 4	400 से 500	240	4.0
मध्यम कार्य	4 से 6	400 से 500	280	4.2
अधिक कार्य	6 से अधिक	400 से 500	320	4.5

अनुमानित तौर पर काम करने वाले पशु को 100 कि.ग्रा. शरीर भार पर 2.5 से 3 कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ देना चाहिए। यह शुष्क पदार्थ सूखे चारे, हरे चारे एवं दाने से दे सकते हैं। कुल शुष्क पदार्थ की मात्रा का 2/3 भाग सूखे व हरे से तथा 1/3 भाग रातव व दाने से होता है। 2/3 भाग सूखे व हरे चारे से 1/3 भाग सूखे तथा 1/3 भाग हरे चारे से पूरी करना चाहिए। अगर चारा दलहनी है तो 1/4 भाग हरा चारा पर्याप्त होता है।

सामान्य प्रबंधन का रखें विशेष ध्यान

काम करने वाले पशुओं को दिन में दो से तीन बार आहार दें। इस बीच में 8 से 10 घंटे का अंतर रखें, जिससे ऊर्जा की पूर्ति के साथ आहार प्रणाली को आराम मिले तथा जुगाली करने वाले पशु पर्याप्त जुगाली कर सकें। पशुओं को हमेशा स्वच्छ, स्वादिष्ट, पाचक, पौष्टिक तथा सस्ता आहार दें। आहार में विभिन्न प्रकार के चारे, दाने, चोकर व जल आदि होने चाहिए। आहार में 50 से 60 ग्राम नमक प्रति पशु अवश्य होना चाहिए। चारे–दाने में जब भी बदलाव लाना हो धीरे–धीरे लाएं। एकदम परिवर्तन से पाचन प्रणाली पर प्रतिकूल असर पड़ता है। पशुओं को पर्याप्त मात्रा में और स्वच्छ एवं ताजा पानी दिन में तीन से चार बार पिलाना चाहिए। काम करने वाले पशुओं के पालन–पोषण में भी आहार का अत्यन्त महत्व है, क्योंकि पालन पोषण का 60 से 70 प्रतिशत खर्चा आहार पर ही होता है। अतः पशु पालक काम करने वाले पशुओं का आहार प्रबन्धन बेहतर कर उनसे उनकी क्षमता के अनुरूप अधिक कार्य ले पाने में सफल हो सकेंगे।

घर पर ही बनायें संतुलित आहार

कार्य करने वाले पशुओं में कार्य करने पर प्रोटीन का ह्रास न होकर शरीर की शक्ति का ह्रास होता है और यह शक्ति कार्बोहाइड्रेट एवं चिकनाई से पशुओं को प्राप्त होती है। अतः जब तक शरीर में कार्बोहाइड्रेट तथा वसा उपस्थित है तब तक कार्य करने में प्रोटीन का ह्रास नहीं हो सकता है। इसलिए पशु जितना भी अधिक कार्य करता हो, उसको उसी अनुपात में शीघ्र पाचक कार्बोहाइड्रेट

तालिका 2: काम करने वाले पशुओं हेतु संतुलित आहार का निर्धारण

अवयव	आहार (%)		
	प्रथम	द्वितीय	तृतीय
रातव	55.0	54.0	60.0
खल	40.0	40.0	35.0
चूनी–चोकर	1.5	2.0	1.0
गुड़	1.5	2.0	2.0
साधारण नमक	2.0	2.0	2.0
कुल योग	100.0	100.0	100.0

खिलाना चाहिए। इसके लिए पशुपालक घर पर ही काम करने वाले पशुओं का आहार बना सकते हैं। घर पर 100 कि.ग्रा. आहार हेतु रातव – 55 कि.ग्रा., खल – 40 कि.ग्रा., नमक – 2 कि.ग्रा., चूनी, चौकर, गुड़ आदि 3 कि.ग्रा. के अनुपात में मिलाकर तैयार कर सकते हैं। काम करने वाले पशुओं को अलग से विटामिन्स एवं खनिज तत्व देने की आवश्यकता नहीं होती इसकी आवश्यकता पूर्ति अन्य आहार से हो जाती है।

नीलर्सना (ब्लूटंग) रोग

करमचन्द, एस के विश्वास, बी मण्डल एवं ए बी पाण्डेय

विषाणु विज्ञान विभाग, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, परिसर मुक्तेश्वर –२६३ १३८ (उत्तराखण्ड)

पशुओं में कई प्रकार के रोग होते हैं जिन्हें दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है : संक्रामक रोग– जो जीवाणु, विषाणु, कवक, और परजीवी कारकों से होते हैं; असंक्रामक रोग जो कि पशु की शारीरिक क्षमता, पोषक तत्वों की कमी, विषाक्तता तथा उत्पादन से जुड़ी समस्याओं के कारण होते हैं। नीलर्सना (ब्लूटंग) एक गैर–सक्रांमक, कीट जनित, मुख्यतः भेड़ का विषाणु रोग है, लेकिन कई पालतू पशु जैसे कि गाय, भैंस, बकरी एवं वन्य रोमन्थी भी इस रोग से प्रभवित होते है। स्वदेशी भेड़ नस्लें विदेशी नस्लों की अपेक्षाकृत कम संवेदनशील होती हैं। समशीतोष्ण क्षेत्रों की भेड़ की नस्लें उष्णकटिबंधीय से अधिक संवेदनशील होती हैं और वृद्ध भेड़, मेमनों से अधिक अतिसंवेदनशील होते हैं। नीलर्सना मनुष्य को संक्रमित नहीं करता और फलस्वरुप इस रोग का कोई सार्वजनिक महत्त्व नहीं है। नीलर्सना सबसे पहले अठारहवीं सदी में, दक्षिण अफ्रिका में भेड़ की "एपिज़ोओटिक कैटेरह" ज्वर के रुप में वर्णित किया गया। उसके बाद यह रोग कई देशो के कटिबंघ और उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया गया। यह रोग लगभग सभी महाद्वीपों यानी अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और एशिया में अक्षांश 40° द० और 53° उ० के बीच के क्षेत्रों में पशुस्थानिक बीमारी है।

भारतीय उपमहाद्वीप में नीलर्सना पहली बार सन् 1959 में पश्चिमी पाकिस्तान से सूचित किया गया। भारत में सन् 1964 में नीलर्सना का प्रकोप पहली बार महाराष्ट्र से सूचित किया गया। इसके बाद नियमित रुप से कई शोधकर्ताओं द्वारा नीलर्सना का प्रकोप देश के कई भागों से दर्ज किया गया। भारत के विभिन्न भागों में, सीरो – महामारी विज्ञान के अध्ययन से भारतीय बकरी, गाय, भैंस और ऊंट में वायरस के व्यापक प्रसार का पता चलता है। इस रोग के नियंत्रण हेतु सन् 2001 में, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान के नेतृत्व में अखिल भारतीय नेटवर्क परियोजना शुरू की

चित्र 1. ब्लूटंग रो से प्रभावित पशु

गई जिसका उद्देश्य इस रोग की व्यापकता, संचरण, निदान तकनीकों एवं टीकों का विकास, रोगी पशुओं से विषाणु का अलगाव, आणविक गुण निरूपण, प्रसार और महामारी विज्ञान का अध्ययन करना है।

रोग का कारण और फैलने का माध्यम

यह रोग ब्लूटंग विषाणु के कारण होता है, जो क्यूलीक्वाइडस वैक्टर द्वारा फैलता है । हालांकि गाय में नाल के रास्ते के माध्यम से बछड़े में फैलने का मामला दर्ज किया गया है। कई स्तनधारी पशुओं में मुँह के मार्ग से और बड़े मांसाहारी जानवरों में संक्रमित टीके के इंजेक्शन से और संक्रमित मांस खाने से नीलर्सना रोग का मामला दर्ज किया गया है। असंक्रमित वैक्टर संक्रमित पशु से रक्त भोजन लेता है और एक नए असंक्रमित पशु को रोग संचारित करता है। इस विषाणु के विश्व में 26 सीरमीप्रकार है, और भारत में इसके 21 सीरमीप्रकार मौजूद हैं। दुनिया भर में 1400 से अधिक क्यूलीक्वाइडस की प्रजातियां है जिनमें से 20 से भी कम ब्लूटंग विषाणु के वास्तविक या संभव वैक्टर है। रोग की गंभीरता, पशु की संवेदनशीलता, कीट क्षमता, विषाणु का विषैलापन, पर्यावरण की स्थिति और भोगोलिक स्थान की योग्यता जैसे कारकों पर निर्भर करता है। नीलर्सना रोग साल भर सूचित किया गया है लेकिन गर्मियों और शरद ऋतु के महीनों में सबसे आम होता हैं जब खून चूसने वाले कीट सबसे प्रचुर मात्रा में होते हैं। अनुकूल पर्यावरण जैसे कि गर्म जलवायु और उच्च नमी क्यूलीक्वाइडीस लार्वा के विकास के लिए वांछनीय हैं। क्यूलीक्वाइडीस मुख्य रुप से जुलाई और नवंबर के बीच काफी सक्रिय होते है। प्रभावित मवेशियों में रुग्णता औसतन 15% और मृत्यु दर 20% तक होती है।

संक्रमण और रोग के लक्षण की उपस्थिति के बीच की अवधि

यह पशु की प्रजाति, आयु और विषाणु के प्रकार पर निर्भर करता है जो 4 से 20 दिनों तक हो सकती है।

आर्थिक हानि

नीलर्सना विषाणु संक्रमण से भारत तथा दूसरे कई देशों में भेड़ उत्पादन पर भारी असर पड़ता है, विषाणु संक्रमण से पशुओं की अस्वस्थ्यता के कारण उत्पादकता में कमी हो जाती है, मृत्यु दर बढ़ जाती है तथा प्रजनन क्षमता कम हो जाती है जिससे पशुपालकों को आर्थिक हानि होती है। इसके साथ ही, संक्रमित पशुओं को अन्य क्षेत्रों या देशों में निर्यात करने के प्रतिबंध के कारण भी काफी आर्थिक हानि होती है।

नैदानिक लक्षण

भेड़ में, नीलर्सना के लक्षण, तीव्र बुखार (105–106° फारेनहाइट), अवसाद, भूख न लगना, अत्यधिक राल निकालना, मुँह के श्लेष्म झिल्ली का लाल होना, चेहरा एवं जीभ का सूजन, जीभ का नीला होना, नाक का बहना, मुँह के श्लेष्म झिल्ली पर अल्सर ,नेत्रश्लेमलाशोथ, सांस में तकलीफ एवं घड़घडाहट की आवाज,पाँव में छाले पड़ना, मांसपेशियों में कमजोरी, लंगड़ापन, शरीर को धनुषाकार बनाकर रखना, गर्भपात, जन्मजात असामान्यताएं, पशु का कमजोर होना और अंततः मृत्यु होना। मवेशी और बकरियों में संक्रमण आमतौर पर लक्षण रहित होता है और इन्हें विषाणु संग्रह समुदाय के रूप में माना जा सकता है। ये संग्रह समुदाय कई महीनों के लिए किसी भी नैदानिक लक्षण दिखाए बिना रह सकती है। हालांकि ब्लूटंग विषाणु –8, जो हाल ही में यूरोप भर में फैला है, मवेशिओं में नैदानिक लक्षण और मृत्यु का कारण बना। गंभीर नैदानिक लक्षण और मृत्यु कभी–कभी बकरी और ऊँट में भी होता है। लेकिन अफ्रिका के कुछ मवेशियों में, भेड़ो जैसे लक्षण देखे गए। उत्तरी अमेरिका के सफेद पुंछ हिरण में ब्लूटंग विषाणु एक घातक रक्तस्त्रावी रोग का कारण है।

शवपरीक्षा में, फेफड़े की धमनी और हृदय की महाधमनी पर रक्तस्त्राव देखा जाता है। रक्तस्त्राव ज्यादातर ऊपरी

जठरांत्र संबंधी मार्ग मुख, ग्रासनली गुहा, और रूमेण में पाए जाते हैं। ब्लूटंग विषाणु, रक्त कोशिकाओं में प्रतिकृति करता है और तपेदिक् रक्त के जमने में कुछ भी गड़बड़ी जैसे जमावट असामान्यताओं का उत्पादन करता है। भेड़ और मवेशी में, संक्रामक ब्लूटंग विषाणु 35 से 60 दिनों के लिए रक्त में पाया जा सकता है।

निदान

केवल प्रदर्शित लक्षणों के आधार पर रोग का निदान कठिन है। इस रोग के नैदानिक लक्षण विषाणु संक्रमण के संकेत हैं, लेकिन प्रयोगशाला परीक्षण और पोस्टमार्टम परीक्षण, एक निश्चित निदान के लिए आवश्यक हैं। प्रयोगशाला में नीलर्सना रोग का निदान, विषाणु अलगाव, रक्त एवं उतक में एलिजा द्वारा विषाणु प्रतिजन एवं सीरम में प्रतिकाय का पता लगाकर किया जाता है।

नियत्रंण

नीलर्सना विषाणु के कई सीरमीप्रकार और बडी़ संख्या में प्रभावित जानवर के कारण रोग का नियत्रंण बहुत मुश्किल है। अतिसंवेदनशील पशुओं को क्यूलीक्वाइडस कीट से दूर रखें और कीटनाशक डालकर कीट को नियत्रंण करने का प्रयास किया जा सकता है। प्रातः सूर्योदय और सायं सूर्यास्त के समय कीटों की सक्रियता सबसे अधिक होती है, अतः इस समय पर पशुओं को चराई पर न ले जाने से रोग संक्रमण कम किया जा सकता है। रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए और स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस रोग का कोई निर्धारित उपचार नहीं है लेकिन घावों पर एंटीसेप्टिक मलहम आदि का प्रयोग किया जा सकता है। टीके दुनिया भर में बड़े पैमाने पर उपयोग किए जाते है भारत में टीका विकसित किया गया है परन्तु उपयोग में नहीं है।

अगर आपको नीलर्सना (ब्लूटंग) रोग का संदेह हो, तो क्या करना चाहिए?

नीलर्सना रोग का कोई भी संदेह हो तो तुरंत स्थानीय पशु चिकित्सा कार्यालय से संर्पक करना चाहिए। किसानों को इस रोग के नैदानिक लक्षण (उपर दिए गए) से परिचित होना चाहिए। पशुपालको को चाहिए कि ऊपर दिये गये रोग लक्षणों में से किसी का आभास होते ही तत्काल उसकी सूचना पशुचिकित्सक को देकर और सावधानी बरतकर रोग को क्षेत्र के अन्य पशुओं में फैलने से रोके। संदेह की स्थिति में पशुओं को परिसर से तब तक स्थानांतरित नहीं करना चाहिए जब तक खून के नमूनों के जांच का परिणाम इस रोग के लिए नकारात्मक न हो।

बकरियों की जूनोटिक बीमारियाँ

राकेश रंजन, धर्मेन्द्र कुमार एवं बी सी सरखेल
एनिमल बायोटेक्नोलाजी सेन्टर, एनडीवीएसयू, जबलपुर

चीन के बाद भारत बकरी आबादी वाला दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है। बकरी पालन भारत में छोटे और भूमिहीन किसान की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। बकरियों से अन्य पशु प्रजातियों की अपेक्षा विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक, प्रबंधकीय और जैविक फायदे हैं। इसलिए इन्हें गरीब लोगों की गाय भी कहा जाता है। ये देश में विशेष कर शुष्क, अर्ध शुष्क और पहाड़ी क्षेत्रों में छोटे और सीमांत किसान की आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं. बकरियों ने प्रचीन काल से अब तक मानव जाति की बहुत अधिक सेवा की है। बकरी का दूध आसानी से पचाया जा सकता है, इसलिए इनका दूध बीमार बच्चों व बूढ़ों को, एक औषधि के रूप में दिया जा सकता है। बकरी का मांस अन्य मांस की अपेक्षा ज्यादा पसंद किया जाता है क्योंकि यह कम वसा वाला होता है और इसके खिलाफ कोई धार्मिक मनाही भी नहीं है।

जुनोसिस एक ऐसी बीमारी व संक्रमण है जो किसी भी मनुष्य में स्वभाविक रूप से जानवर के द्वारा संक्रमित किया जा सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) और केंदीय रोग नियंत्रण और रोकथाम (सीडीसी) के अनुसार कम से कम 61% मनुष्य रोग जूनोटिक हैं। व्यावसायिक रोग मुख्य रूप से उनसे जुड़े हुए श्रमिकों को प्रभावित करता है। बकरी का कच्चा दूध, डेयरी उत्पाद क्रीम, बकरी का अधपका मांस भी रोग संचारित कर सकते हैं। स्वाभाविक स्थिति के तहत बी मिलिटेनसिस, कल्माय्डिया अब्रोटस, कोक्शिला बुर्नेटी, पशुओं से मनुष्य में चली जाती हैं। जूनोटिक बिमारियों के संचारण से मानव के स्वास्थ्य के साथ–साथ पशु उत्पादों पर भी प्रभाव पड़ा है।

तालिका 1. बकरियों के महत्वपूर्ण जूनोटिक रोग

बीमारी	कारणात्मक एजेंट (बीमारी)	चिकत्सीय संकेत	मानव में संकेत	संचरण का माध्यम
ब्रूसीलोसिस	ब्रूसल्ला मेलिटेंसिस	गर्भपात, मृत प्रसव, ओरकाइटीज गठिया	लहरदार बुखार, थकान, सिर दर्द, पसीना आना, जोड़ों का दर्द, बेचैनी, वजन घटना, गर्भपात	मौखिक, श्वसन, नेत्रश्लेष्मला, त्वचीय
लिस्टीरिओसिस / बकरी पोलियो	लिस्टेरिया मोनो स्पाईटोजेन मोनोच्य्तो	गर्भपात, स्तन की सूजन, सेप्टीसीमिया	सेप्टीसीमिया, दिमागी बुखार, गर्भपात	मौखिक
गिल्टी रोग/एन	बेसिलस एन्थ्रासिस	मस्तिष्क अनोक्सिया, फेफड़े के एडीमा, लंगड़ापन, ग्रसनी	त्वचा पर घाव (हाथ, गर्दन), सेप्टीसीमिया, दस्त, उल्टी, पेट दर्द	त्वचीय,श्वसन, जानवरों और पशु उत्पादों के साथ मौखिक, निकट संपर्क

फूड विषाक्तता	स्टेफिलोकोकिस ओरियस	थनों में सूजन	गंभीर उल्टी, पेट दर्द, दस्त, सिर दर्द	मौखिक
पास्ट्रोल्लोसिस	पास्ट्रोला मल्टासिडा	बच्चों में निमोनिया, सेप्टीसीमिया, मौत	निमोनिया, फोड़ा	त्वचा, श्वसन,
इयर्सिपलास	एरीसिपैलोथ्रिक्स रूसियोपैथे	गठिया	पर्विल, गठिया, अन्तर्हृद्शोथ और सेप्सिस	त्वचा
क्षयरोग	माईक्रोबैक्टीरियम वोमिस, माईक्रोबैक्टीरियम कैपरी	श्वसन तंत्र की बीमारी, लिम्फाडेनिटीस	खांसी, भूख न लगना, अस्पष्टीकृत वजन घटना, थकान, रात को पसीना आना, ठंड लगना, लिम्फाडेनिटिस	मौखिक, निकट संपर्क श्वसन
केसिअस लिम्फाडेनिटिस (सी एल)	क्रोनो बैक्टीरियम पैसुड़ोट्यूबरलोसिस	कान के पीछे व जबड़े के नीचे फोड़ा, वजन घटना	मवाद और मृत ऊतक के साथ दर्दनाक त्वचा के घाव	मवाद के साथ सीधे त्वचा से संपर्क
जॉन रोग	माईको बैक्टीरियम एवियम पैराटूबरलोसिस	वजन घटना, प्रगतिशील निमोनिया	डाइरिया क्रोहन रोग	कच्चे दूध, कच्चा मांस, क्रीम, डेरी उत्पाद के उपयोग से
इन्सेफेलाइटिस (टिक बोर्न)	फ्लेवि वायरस	मस्तिष्क का इन्सेफेलाइटिस	मस्तिष्क की सूजन	टिक काटने से
ओर्फ सोरे माउथ/ संक्रामक पीबभरी	पेरापोक्सी वायरस	होंठ, मसूड़ा, जीभ, होंठ, नाक और पैर की उंगलियों में त्वचा घाव, भूख न लगाना	उंगलियों, होठों पर त्वचा के घावों	जानवरों और फोमटीस के साथ निकट संपर्क
रिफ्ट वैली फीवर	रिफ्ट वेल्ली फीवर वायरस परिवार बुनियाविरिडया, जीनस फ्लेबो वायरस	स्पर्शोन्मुख संक्रमण, गर्भपात, भ्रूण विकृतियां, हैपेटाइटिस, बुखार	बुखार, सिर दर्द, मांसपेशियों में दर्द, मितली, फोटोफोबिया, पीलिया और रक्तस्रावी बुखार मौत (0.5–2%) के साथ	मच्छर, निकट संपर्क, मुंह द्वारा

रेबिस	रहब्डोविरिडे, जीनस ल्यस्सा वायरस	व्यवहार आशंका, आक्रामकता, अति–उत्तेजना, चिड़चिड़ापन, हाईपर साल्वेशन, घबराहट, एकांत में परिवर्तन	बुखार, थकान, सिरदर्द, उल्टी, भूख, तंद्रा, आंशिक पक्षाघात, हाईपरसलिवेशन की कमी, आंदोलन	त्वचीय, संक्रमित जानवर द्वार काटे जाने पर
टोक्सोप्लाजमोसिज	टोकसोपलसमा गोंदी	गर्भपात, अलाक्षणिक संक्रमण	अलाक्षणिक संक्रमण, गर्भपात, जन्मजात संक्रमण	मुंह द्वारा, निकट संपर्क
क्रिप्टोस्पोरिडायोसिस	क्रिप्टोस्पोर्डियम	बुखार, डायरिया, पेट में ऐंठन	बुखार, पतली दस्त, पेट में ऐंठन, उल्टियाँ	मौखिक मार्ग द्वारा दूषित भोजन लेने से
गेयर्डीसिस	गेयर्डीया स्प	दस्त, गैस या पेट फूलना, पेट में ऐंठन या पेट की खराबी या मितली	आंतों की समस्या	मौखिक (पीने का पानी)
पेरागोनिमैसिस	पेरागोनिम वेस्ट्रमनी	फेफड़ों में संक्रमण	फेफड़े और मस्तिष्क घावों में संक्रमण	अध्पकाया मांस एंव मछली खाने से
क्यू बुखार (क्वींस लैंड बुखार)	कोक्सिला बुर्नेटी	गर्भपात, मृत प्रसव, अलाक्षणिक संक्रमण, निमोनिया	बुखार, फ्लू जैसे सिंड्रोम, निमोनिया, हैपेटाइटिस, अन्तर्हृद्शोथ, थकान सिंड्रोम, गर्भपात	श्वसन, त्वचा संबंधी, मौखिक, टिक्स
चलेमियाडायोसिस	चलेमियाडायो एबोर्ट्स	गर्भपात, मृत प्रसव, अलाक्षणिक संक्रमण, एप्डीडीमिटस, निमोनिया	फ्लू जैसे सिंड्रोम, निमोनिया, गर्भपात	निकट संपर्क, श्वसन, त्वचीय
रिंग वर्म संक्रमण	ड्रमटोफेटिस (फंगी) मैक्रोस्पोर्म स्प, ट्रिचोफयाटोन स्प	त्वचा के घावों पर पीड़ादायक फुंसी, रिंग आकार का गुलाबी घाव	त्वचा के घावों पर पीड़ादायक फुंसी, अंगूठी के आकार के गुलाबी घाव	सीधा संपर्क

रोगों को नियंत्रण में करने और रोकथाम के लिए डब्ल्यू. एच. ओ. और सीडीसी द्वारा बहुत से प्रयास किये जाते हैं। सामान्य तौर पर देखने पर, निम्नलिखित उपायों से रोग संचरण की रोकथाम में मदद मिलेगी और जिससे इनको नियंत्रित किया जा सकता है:

1. टीकाकरण, पर्यावरणीय स्वच्छता
2. रोग का प्रारंभिक निदान
3. क्वारेन्टाइन
4. वेक्टर और रिजर्वायर नियंत्रण
5. महामारी विज्ञान के निदान
6. स्वास्थ्य और सुरक्षा कार्यक्रम में व्यक्तियों का नामांकन
7. रोग के बहुघटकीय कारण के बारे में ज्ञान
8. बीमारी की रोकथाम के बारे में लोगों को शिक्षित करना
9. रोग प्रतिरोध के संदर्भ में पशु का आनुवंशिक सुधार

किसान और पशु चिकित्सकों के रूप में मनुष्य, जानवर के साथ काम कर रहे हैं। अतः स्वास्थ्य शिक्षा आवश्यक होनी चाहिए। भारत में बकरी एंव अन्य पशुओं से रोग संचरण की रोकथाम और नियंत्रण की रणनीति के लिए जागरूकता कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। खेतों में पशुओं के स्वास्थ्य की नियमित जांच को अनिवार्य किया जाना चाहिए। क्योंकि रोग प्रसारण से पहले रोकथाम करना बेहतर होता है।

राजस्थान की कांकरेज, सांचोरी व नारी गायों में बहु–भिन्न रुपी विधि द्वारा शारीरिक माप के आधार पर विभेदीकरण

राकेश कुमार पुंडीर, प्रमोद कुमार सिंह एवं देविंदर कुमार सडाना

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो करनाल (हरियाणा) – 132001

सारांश

इस अध्ययन में कांकरेज नस्ल की 407 गाय, सांचोरी की 152 और नारी की 175, कुल 735 स्वदेशी गायों की विभिन्न बारह शारीरिक मापों के आधार पर उनमें अंतर करने का प्रयास किया गया है। शारीरिक मापों के आधार पर पाया गया कि सांचोरी गाय आकार में सबसे बड़ी, कांकरेज मध्यम आकार की व नारी छोटे आकार की है। क्रमानुसार डिस्क्रिमिनेट विश्लेषण (स्टेप वाइज डिस्क्रिमिनेट एनालिसिस) करने से पता चला कि कूल्हे की हड्डियों के बीच की दूरी, सीने की परिधि, सींग की लम्बाई, चेहरे की चौड़ाई, कान की लम्बाई, चेहरे की लम्बाई, सींग की परिधि, विदर पर शरीर की उँचाई, स्विच बिना पूंछ की लम्बाई व शरीर की लम्बाई क्रमशः सबसे अधिक अंतर करने वाले गुण इन तीनों समूहों में थे । महानोबिस दूरी से पता चला कि ये तीनो समूह एक दूसरे से भिन्न हैं । औसत उठाना पद्धति (एवरेज लिंकेज मेथड) पर आधारित डेंडोग्राम से पता चला कि कांकरेज गाय एक अलग समूह में है, व सांचोरी व नारी दोनो मिलकर एक अलग समूह बना रही हैं । क्रॉस वेलिडेशन विधि से अलग–अलग हर पशु को आवंटित किया गया जिसमें पाया गया कि कांकरेज के 100%, सांचोरी के 98.08% और नारी के 98.98% पशु अपने–अपने समूह में सही रूप में आवंटित हैं । जिससे हम कह सकते हैं कि ये तीनो समूह अलग–अलग हैं और सांचोरी व नारी को भी एक नस्ल के रूप में अलग से पंजीकृत किया जा सकता है व उसी के आधार पर इनके आनुवांशिक सुधार कार्यक्रम बनाये जा सकते हैं।

प्रस्तावना

भारत में पशु जनगणना–2012 के आधार पर 19 करोड़ गोवंश हैं। जिसमें 3.9 करोड़ विदेशी व संकर व 15.1 करोड़ स्वदेशी गोवंश हैं। कुल गोवंश में से 11.6% स्वदेशी पंजीकृत नस्लें (37), 2.1% स्वदेशी ग्रेडेड, 16.6% विदेशी व संकर गोपशु हैं व शेष 69.7% स्वदेशी गोवंश को अभी परिभाषित करना है। ऐसे ही राजस्थान में भारत की गोवंश की कुल आबादी का 7% गोवंश है, जो कि लगभग 133 लाख है। इनमें से लगभग 44% परिभाषित की गई विभिन्न नस्लों के हैं जैसे कि गिर, थारपारकार, कांकरेज, साहीवाल, राठी आदि। शेष गोवंश में बहुत सारे समूह होंगे जैसे कि प्रस्तुत अध्ययन में सांचोरी व नारी दो गोवंश के समूहो को लेकर उनका अध्ययन कर पता करने की कोशिश की गई है कि वे कांकरेज जो की उसी क्षेत्र में मिलती हैं, से अलग हैं या उसके जैसी ही हैं। अजीज व हूर (2013) ने बहुभिन्न रूपी सांख्यिकी (मल्टी वेरिएंट) का उपयोग कर पशुओं के विभिन्न समूहो को अलग–अलग परिभाषित किया है, जो कि एक गुण के आधार पर वर्गीकृत करने से बेहतर है, क्योंकि ये एक गुण को एक समय पर देखता है, जबकि बहुभिन्न रूपी तकनीक सभी गुणों को साथ–साथ एक ही समय पर देखकर निष्कर्ष निकालता है। कांकरेज भारतीय गाय की एक पंजीकृत नस्ल है, जबकि सांचोरी व नारी पर अध्ययन की जरूरत है। तीनो प्रकार की गायें राजस्थान में मिलती हैं, जो कि वहाँ के वातावरण में अच्छी तरह उत्पादित कर वहाँ के किसानो की जीविका में सहायता करती हैं।

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य शारीरिक मापों के आधार पर बहु–भिन्न रूपी तकनीक का उपयोग कर यह देखना है कि इनमें कितनी समानता/विषमता है । जिसके आधार

पर इनको अलग पंजीकृत करने की आवश्यकता है या नही, इसको जानना है ।

सामग्री व विधि

तीनो समूहों की गायों का अध्ययन राजस्थान प्रदेश में किया गया है। यह प्रदेश ऊष्ण कटिबंधीय जलवायु वाला क्षेत्र है। यहाँ पर नवंबर से फरवरी में ठंड व अन्य महीनो में गर्मी रहती है। गर्मियों में तापमान 49 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है और सर्दियों में तापमान शून्य से 2 डिग्री सेल्सियस नीचे तक पहुँच जाता है। कुल 407 कांकरेज गायें बनासकांठा (गुजरात) से, 152 सांचोरी गायें जालोर (राजस्थान) से व 171 नारी गायें सिरोही राजस्थान से अध्ययन में शामिल की गयीं (चित्र– 1,2,3)। सभी शारीरिक मापें एक ही व्यक्ति द्वारा ली गयीं, जिससे की माप लेने मे कोई त्रुटि न हो। सभी मापें गाय की बाई तरफ से ली गयीं। सभी गायों की शारीरिक मापें (शरीर की लम्बाई, उँचाई, सीने की परिधि, पेट की परिधि, कान की लम्बाई, चेहरे की लम्बाई व चौड़ाई, सींग की परिधि व लंबाई, पूंछ की लम्बाई बिना स्विच व स्विच के साथ, कूल्हे की दोनों हड्डियों के बीच की दूरी) सें.मी. में मापी गयीं। सभी विश्लेषण सास (2009) का प्रयोग कर किए गये। कौन गुण/माप सबसे ज्यादा तीनों समूहों में अंतर कर सकता है, इसको जानने के लिए स्टेपडिस्क (सास) का प्रयोग किया गया। जिसको जाँचने के लिए गुण/माप का सापेक्ष महत्व, आंशिक आर–स्क्वायर व एफ–वैल्यू को आधार बनाया गया। तीनो समूहों में महा बेसिल दूरी जानने के लिए केनडिस्क (सास) का प्रयोग किया गया, जिससे पता चल सके की कौन सा समूह किस समूह के नजदीक है व कौन सा दूर है। स्टेपडिस्क एक बहु–भिन्न रूपी तकनीक है। महाबोलीनीज दूरी से डेंडो ग्राम बनाने के लिए क्लस्टर (सास) विधि का प्रयोग किया गया। जिससे पता चला सके कि कौन सा समूह किसके साथ है व किससे दूर है। डिस्क्रीम (सास) का प्रयोग कर यह जाना गया कि यदि सभी पशुओं को सभी शारीरिक मापों के आधार पर आवंटित किया जाये तो कौन सा पशु किस समूह में जाएगा और इसका आगे विश्लेषण क्रास मान्यता (क्रॉस वेलिडेशन) विधि से कर उनका प्रतिशत व त्रुटि जानी गयी ।

चित्र 1. कांकरेज गाय

चित्र 2. सांचोरी गाय

चित्र 3. नारी गाय

परिणाम व चर्चा

कांकरेज एक पंजीकृत भारतीय गाय की नस्ल है, जो कि राजस्थान व गुजरात में पाई जाती है। इन गायों के शरीर का रंग सलेटी, सींग लंबे व घुमावदार व शरीर लंबा व मजबूत होता है। इन गायों में दूध उत्पादन की अच्छी क्षमता होती है जो कि 300 दिन में लगभग 2200 किलो ग्राम दूध देती हैं । सांचोरी पशु जालोर जिले (राजस्थान) में मिलते हैं, गाय के शरीर का रंग आमतौर पर सफेद होता है। ये शारीरिक माप के आधार पर थारपारकर से छोटी व कांकरेज से बड़ी होती है । इनमें भी दूध उत्पादन की अच्छी क्षमता होती है। ये लगभग 300 दिन में 2000 किलोग्राम दूध देती हैं। नारी गाय पाली जिले की बाली तहसील व सिरोही जिले में पाई जाती है। ये गायें पहाड़ों पर अच्छी तरह से रह सकती हैं। इसके शरीर का रंग सफेद व भूरा होता है। ये गायें अपेक्षाकृत कम दूध देती हैं। इनके सींग लम्बे होते हैं। तीनो प्रकार की गायों के सभी शारीरिक माप तालिका– 1 में दिखाए गये हैं । शरीर की लम्बाई, सीने की परिधि, पेट की परिधि, सींग की लम्बाई व परिधि व कूल्हे की हड्डियों के बीच की दूरी तीनो समूहों में सांख्यिकी के आधार पर भिन्न व महत्वपूर्ण हैं । सींग की लम्बाई को छोड़ कर ये सभी मापें सांचोरी गाय में अधिक हैं। सींग की लम्बाई नारी में सबसे ज्यादा हैं। शरीर की उँचाई, चेहरे की लंबाई व चौड़ाई व पूंछ की लम्बाई (बिना स्विच के) कांकरेज व सांचोरी में सांख्यिकी के आधार पर भिन्न नहीं हैं। स्विच के साथ पूंछ की लम्बाई कांकरेज व नारी में भिन्न नहीं हैं, लेकिन सांचोरी के साथ भिन्न है। भिन्नता गुणांक (सी.वी.) दर्शाता है कि दूसरी अन्य मापों के मुकाबले सींग की लम्बाई व चौड़ाई, कान की चौड़ाई व कूल्हे की हड्डियों के बीच की दूरी में अधिक भिन्नता पाई गई। इसका कारण यह है कि हम इन गुणों के आधार पर पशुओं का चयन नहीं करते हैं। सभी मापों के अध्ययन के बाद पता चला है कि सांचोरी गाय का आकर सबसे बड़ा है। कांकरेज बीच के आकार की व नारी सबसे छोटे आकार की गाय हैं। कांकरेज गायों में शरीर की लम्बाई, उँचाई व सीने की परिधि लगभग रेड सिंधी के समान थी, (पुंडीर व अन्य, 2007अ) व हाल्लिकर गाय (सिंह व अन्य 2008), रेड कंधारी गाय (पुंडीर व अन्य 2008) व केनकथा गाय (पुंडीर व अन्य 2007ब) के अपेक्षा कम पाई गई। निवसरकर व अन्य (2000) ने पाया कि शरीर की लम्बाई, उँचाई व पेट की परिधि थारपारकर गाय के मुकाबले सांचोरी में कम थी। जबकि सींग की लम्बाई व परिधि इन गायों में थारपारकर के मुकाबले ज्यादा थी। नारी गाय में सींग की लम्बाई को छोड़ कर सभी माप कांकरेज गाय से कम पाई गई (पुंडीर व अन्य 2011) व सींग की लम्बाई इन गायों में कांकरेज के मुकाबले अधिक पायी गई। सभी मापों को सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर पाया गया कि ये तीनो गायों के समूह कांकरेज, सांचोरी व नारी अलग–अलग हैं और इनको अलग से नस्ल के रूप में पंजीकृत किया जा सकता है।

विद्दित विभेदक विश्लेषण (कैनॉनिकल डिस्क्रीमेंट) विधि से नैईफ्ट व मारकस (1980) ने बताया की इससे हम जान सकते हैं कि कौन सा गुण/माप सबसे अधिक भेद करने में सहायक है, विभिन्न समूहों में विभिन्न गुणों के एक साथ मिलाकर/क्रमानुसार (स्टेप वाइज) विश्लेषण से पता चला है कि कूल्हे की हड्डियों के बीच की दूरी, सीने की परिधि, चेहरे की लम्बाई, सींग की परिधि व उँचाई, स्विच बिना पूंछ की लम्बाई, पूंछ की लम्बाई स्विच के साथ व शरीर की लम्बाई क्रमशः इन तीनो समूहों से सबसे ज्यादा भेद करने की क्षमता रखते हैं (तालिका– 2)। शरीर की लम्बाई को छोड़ कर सभी मापों की एफ वैल्यू भी सांख्यिकी के आधार पर महत्वपूर्ण है और इनके आधार पर इन्हे तीनो समूहों में बाँटा जा सकता है। याकूबा व अन्य (2010) ने भी बताया है कि गाय की नस्लों को उनकी उँचाई व चेहरे की लंबाई के आधार पर इस विधि द्वारा अलग किया जा सकता है। कैनॉनिकल डिस्क्रीमेंट विधि द्वारा तीनो समूहों के विश्लेषण

करने पर पता चला कि तीनो समूह अलग–अलग हैं (चित्र– 4) ।

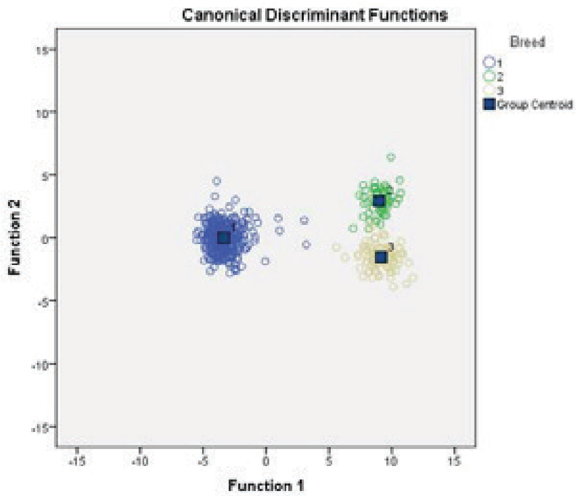

चित्र 4. राजस्थान की (कांकरेज–1, सांचोरी–2, व नारी–3) पशुसमूह के कैनोनिकल डिस्क्रिमिनेंट फंक्शन्स

केनडिस्क (सास) विधि द्वारा तीनो समूहों में महाबोलीनीज दूरी ज्ञात की गई। ये दूरियां कांकरेज व सांचोरी, कांकरेज व नारी और सांचोरी व नारी में क्रमश: 161.23, 158.75 व 20.16 थी (तालिका– 3)। सभी दूरियाँ सांख्यिकीय आधार पर महत्वपूर्ण थी। इन दूरियों के आधार पर कलस्टर विधि द्वारा डेंडोग्राम बनाया (चित्र– 5) गया जिससे दो कलस्टर बने पहले में सांचोरी व नारी और दूसरे में कांकरेज गाय थी जो की महाबोलीज दूरी की सत्यता को सिद्ध करती है। इस विधि द्वारा याकूबा व अन्य (2010) ने भी गाय की नस्लों में दो कलस्टर पाये व इन दूरियों को सांख्यिकी आधार पर महत्वपूर्ण बताया । इसके बाद सभी पशुओं के सभी मापों के आधार पर अलग–अलग समूह में डिस्क्रीम (सास) विधि द्वारा आवंटित किया गया जिसके परिणाम सारणी–4 में दिए गये है। कितने पशु उस विशेष समूह के उसी समूह में या अन्य समूह में गये इससे इनकी सत्यता जाँची गई। इस अध्ययन से पता चला कि100%, कांकरेज 98.08% सांचोरी व 98.98% नारी गाय के पशु अपने–अपने सही समूहों में गये ।सभी त्रुटियाँ मिलकर 0.0098% पायी गई जो की काफी कम हैं, अर्थात इस विधि द्वारा भी हमें पता चला की इन समूहों को शारीरिक माप के आधार पर अलग–अलग किया जा सकता है और ये सभी तीनो अलग–अलग समूह हैं। जिनको कि अलग–अलग नस्ल के रूप में पंजीकृत किया जा सकता है। याकूबा व अन्य (2010) ने यह शुद्धता गायों की दो नस्लों में केवल 85.48% व 96.55% पाई जो कि हमारे अध्ययन से कम हैं, जबकि अजीज व अल–हुर (2013) ने बकरियों मे यह 100% पाया।

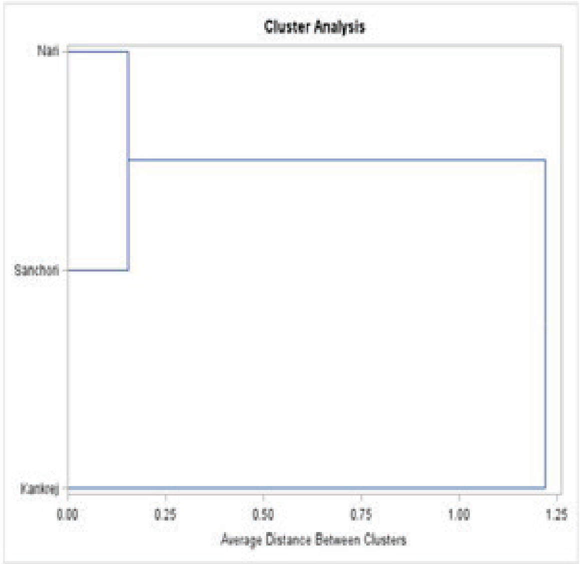

चित्र 5. राजस्थान की विभिन्न गायों की नस्लों मे डेंडोग्राम में दर्शाई गई समानता

निष्कर्ष

इस अध्ययन में पाया गया कि गाय की विभिन्न शारीरिक मापों को प्रयोगकर बहु–भिन्न रुपी विधि से गाय के तीनो समूह कांकरेज, साँचेरी, व नारी भिन्न है ।कांकरेज एक पंजीकृत नस्ल है व साँचेरी व नारी को भी इस आधार पर अलग–अलग नस्ल के रूप में पंजीकृत किया जा सकता है ।एक नस्ल के रुप में सांचोरी व नारी के भी आनुवांशिक सुधार कार्यक्रम बनाए जा सकतें हैं और इनमें सुधार किया जा सकता है ।

सन्दर्भ

1. अजीज, एम. एम. ए. एवं अल–हुर, एफ. एस. 2013. डिफ्रेंटिएशन बिटवीन थ्री साउदी गोट टाइप्स साइज फ्री कनोनिकल डिस्क्रिमिनेशन एनालिसिस, एमिर जर्नल फूड एग्रीकल्चर, 25 (9): 723–735

2. लाइवस्टॉक सेन्सस. 2012. एनिमल हसबेंडरी स्टैटिस्टिक्स। डिपार्टमेंट ऑफ एनिमल हसबेंडरी एण्ड डैयरिंग, एम. ओ. ए., जी. ओ. आई., कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

3. नेफ्फ, एन. ए. एवं एल. एफ. मार्कस. 1980. ए सर्वे ऑफ मल्टी वेरिएट मेथड्स फॉर सिस्टेमैटिकस। प्राइवेटली पब्लिश्ड न्यू यॉर्क।

4. निवसरकर, ए. ई., विज, पी. के. एवं टांटिया, एम. एस. 2000. एनिमल जेनेटिक रिसोर्सेज ऑफ इंडिया कैटल एंड बफैलो, इंडियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च नई दिल्ली। पृष्ठ 155–159.

5. पुंडीर आर. के., सिंह पी. के., सिंह के. पी. एवं डांगी पी. एस. 2011. फैक्टर एनालिसिस ऑफ बायोमेट्रिक ट्रैट्स ऑफ कांकरेज काउस टू एक्सप्लेन बॉडी, एशियन ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस, 24(4):449–456.

6. पुंडीर आर. के., सिंह पी. के., उपाध्याय एस. एन. एवं अहलावत एस. पी. एस. 2007अ. स्टेटस, करक्टेरिस्टिक्स एंड परफॉरमेंस ऑफ रेड सिंधी कैटल, इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस, 77(8):755–758.

7. पुंडीर आर. के., सिंह पी. के., प्रकाश बी. एवं अहलावत एस. पी. एस. 2007 ब. कैरेक्टेरिजेशन एंड इवैल्यूएशन ऑफ केनकथा ब्रीड इन इट्स नेटिव ट्रैक्ट, इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस, 77(2):177–180.

8. पुंडीर आर. के. एवं सिंह पी. के. 2008. स्टेटस, कैरेक्टेरिस्टिक्स एंड परफॉरमेंस ऑफ रेड कन्धारी कैटल ब्रीड इन इट्स नेटिव ट्रैक्ट, इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस, 78(1):56–61.

9. सास. 2009. स्टैटिस्टिकल एनालिसिस सिस्टम यूजरश्स गाइडः स्टेटिस्टिक्स करी, एन सी 27513, यू. एस. ए., सास इंस्टिट्यूट इन्स.।

10. सिंह पी. के., पुंडीर आर. के., अहलावत एस. पी. एस., नवीन कुमार एस., गोविन्दैया एम. जी. एवं असीजा के. 2008. कैरेक्टेरिजेशन एंड परफॉरमेंस इवैल्यूएशन ऑफ हल्लीकर कैटल इन इट्स नेटिव ट्रैक्ट, इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंस, 78:211–214.

11. यकूबा ए, इडाहोर के. ओ., हारुणा एच. एस., व्हेटो, एम. एवं अमूसन, एस. 2010. मल्टीवेरिएट एनालिसिस ऑफ फेनोटीपिक डिफ्रेंटिएशन इन बुनाजी एंड सोकोटो गुडाली कैटल, ऑक्टा एग्रीकल्चरए सोल्वेनिका, 96 (2):75–80.

तालिका 1: राजस्थान के गों नस्ल/ पशुसमूह के विभिन्न पशुओं के वर्णनात्मक आँकड़े (से.मी. में)।

नस्ल/ लक्षण	संख्या	कुल		कांकरेज		सांचोरी		नारी	
		औसत± मानक त्रुटि	भिन्नता गुणांक	औसत ± मानक त्रुटि	भिन्नता गुणांक	औसत ± मानक त्रुटि	भिन्नता गुणांक	औसत ± मानक त्रुटि	भिन्नता गुणांक
शरीर की लम्बाई	735	123.68**±0.28	6.33	123.44[अ] ±0.37	6.05	129.32[ब] ±0.65	6.23	119.28[स] ±0.36	4.08
उँचाई	735	122.20**±0.18	4.20	122.49[अ] ±0.28	4.75	122.95[अ] ±0.33	3.36	120.86[ब] ±0.20	3.20
सीने की परिधि	731	161.25**±0.41	6.96	162.56[अ] ±0.56	6.97	167.02[ब] ±0.75	5.55	152.97[स] ±0.56	4.82
पेट की परिधि	730	177.12**±0.52	7.96	178.95[अ] ±0.70	7.91	183.54[ब] ±0.96	6.52	166.93[स] ±0.72	5.67
चेहरे की लम्बाई	735	44.06±0.08	4.97	44.09 ±0.10	4.85	44.07 ±0.19	5.53	44.01 ±0.15	4.72
चेहरे की चौड़ाई	636	15.47**±0.05	8.92	15.91[अ] ±0.05	6.72	15.92[अ] ±0.11	5.40	14.26[ब] ±0.11	10.16
सींग की लम्बाई	731	42.52**±0.43	27.68	42.47[अ] ±0.53	25.35	32.01[ब] ±0.59	22.86	51.68[स] ±0.70	17.95
सींग की परिधि	728	23.86**±0.16	18.44	26.07[अ] ±0.19	15.30	22.86[ब] ±0.27	14.69	19.53[स] ±0.13	9.37
कान की लम्बाई	732	30.33**±0.10	9.62	31.24[अ] ±0.12	8.16	31.66[अ] ±0.17	6.72	27.00[ब] ±0.11	5.66
पूंछ की लम्बाई स्विच के साथ	730	113.12**±0.40	9.55	111.62[अ] ±0.53	9.72	117.16[ब] ±1.03	10.92	113.07[अ] ±0.56	6.43
स्विच बिना पूंछ की लम्बाई	731	89.69**±0.29	8.79	89.34[अ] ±0.34	7.80	87.37[अ] ±0.80	12.77	92.63[ब] ±0.52	7.36
कूल्हे की हड्डियों के बीच की दूरी	565	22.72**±0.37	39.56	17.28[अ] ±0.10	12.32	37.94[ब] ±0.23	4.58	36.07[स] ±0.17	4.91

** पी <1% स्तर पर महत्वपूर्ण; असमान अक्षर सुपर स्क्रिप्ट वाले मानों में भिन्नता है ।

तालिका 2: राजस्थान की विभिन्न नस्लों / पशुसमूह में विभिन्न लक्षणों के क्रमानुसार चयन का सारांश

वैरिएबल प्रविष्टि	आंशिक आर वर्ग	एफ–मान	पीआर > एफ	विल्क्सश् लैम्ब्डा	पीआर < लैम्ब्डा	औसत वर्गीकृत मानक सहसंबंध	पीआर > एएससीसी
कूल्हे की हड्डियों के बीच की दूरी	0.9475	4996.13	<.0001	0.0525	<.0001	0.4737	<.0001
सीने की परिधि	0.3036	120.54	<.0001	0.0365	<.0001	0.5249	<.0001
सींग की लम्बाई	0.2596	96.78	<.0001	0.0270	<.0001	0.6371	<.0001
चेहरे की चौड़ाई	0.2095	72.99	<.0001	0.0214	<.0001	0.6856	<.0001
कान की लम्बाई	0.1374	43.80	<.0001	0.0184	<.0001	0.7096	<.0001
चेहरे की लम्बाई	0.0761	22.63	<.0001	0.0170	<.0001	0.7295	<.0001
सींग की परिधि	0.0449	12.88	<.0001	0.0162	<.0001	0.7406	<.0001
उँचाई	0.0378	10.75	<.0001	0.0156	<.0001	0.7413	<.0001
स्विच बिना पूंछ की लम्बाई	0.0377	10.70	<.0001	0.0150	<.0001	0.7489	<.0001
पूंछ की लम्बाई स्विच के साथ	0.0444	12.66	<.0001	0.0144	<.0001	0.7589	<.0001
शरीर की लम्बाई	0.0163	4.52	0.0113	0.0141	<.0001	0.7595	<.0001

तालिका 3: राजस्थान के विभिन्न नस्ल / पशुसमूह के बीच महाबोलीनीज दूरी

नस्ल	कांकरेज	सांचोरी	नारी
कांकरेज	0	161.23	158.75
सांचोरी	पी<0.0001	0	20.16
नारी	पी<0.0001	पी<0.0001	0

तालिका 4: राजस्थान के विभिन्न नस्ल / पशुसमूह में वर्गीकृत प्रत्येक गायों की संख्या और प्रतिशत

नस्ल / पशुसमूह	कांकरेज	सांचोरी	नारी	कुल
कांकरेज	407 (100%)	0 (0.00)	0 (0.00)	407 (100%)
सांचोरी	0 (0.00)	51 (98.08%)	1 (1.92%)	52 (100%)
नारी	0 (0.00)	1 (1.02%)	97 (98.98%)	98 (100%)
त्रुटि स्तर	0.0000	0.0192	0.0102	0.0098
प्रायर्स	0.3333	0.3333	0.3333	

पूर्व वर्ष में शोध पत्र लेखन प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान

भारतीय गोपशुओ में रोग प्रतिरक्षण से सम्बंधित टी एल आर 6 जीन की बहुरूपताओं की पहचान व प्रोटीन सरंचना पर उनका प्रभाव

मोनिका सोढ़ी, प्रवेश कुमारी, अमित किशोर, बी पी मिश्रा, रमणीक कौर एवं मनीषी मुकेश

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु अनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल – 132001

सारांश

टोल लाइक रिसेप्टर (TLR) रोग प्रतिरक्षा प्रणाली के प्रमुख अंग हैं। इनमें पायी जाने वाली बहुरूपताएं एमिनो एसिड से बदलाव के द्वारा रोग प्रतिरोधक क्षमता को प्रभावित करती हैं। इस अध्ययन में टीएलआर6 (TLR6) जीन की बहुरूपताओं को पहचानने का प्रयास किया गया है ताकि भविष्य में रोग, रोगजनको व रोगी के आपसी संबंधों को समझने व सुधारने का प्रयास किया जा सके। टीएलआर 6 (TLR6) जीन की अनुवांशिक विविधता के अध्ययन के लिये 11 विभिन्न देसी गौनस्लों का चयन किया गया। टीएलआर (TLR6) जीन के 4.8 के.बी. लम्बे कोडिंग क्षेत्र के प्रवर्धन के लिये 8 प्राइमर जोड़ो का निर्माण किया गया तथा परिवर्धित डीएनए का अनुक्रमण किया गया है। तुलनात्मक विश्लेषण से हमने पाया कि देसी गो नस्लों में न्यूक्लियोटाइड स्थिति 222, 1019, 1612, 1852 पर क्रमशः चार माइक्रोसेटेलाइट रिपीट्स टीसी (3), एसी (3), एजी (3) व जीटी (3) उपस्थित थे जबकि विदेशी नस्लों में यह माइक्रोसेटेलाइट रिपीट्स अनुपस्थित थे। इसके अतिरिक्त विश्लेषण में 29 एसएनपी (SNP) की भी पहचान की गयी जिनमें से 13 सिनॉनिमस और 16 नॉन सिनॉनिमस थी। नॉन सिनॉनिमस एसएनपी (SNP) में से केवल 3 को छोड़ कर शेष सभी में एमिनो एसिड की पोलॅरिटी एक समान थी। पहचान की गयी एसएनपी (SNP) को पब्लिक डाटा बेस से जांच करने पर पाया गया कि इनमें से 23 भारतीय गो नस्लों के लिये नवीन थी। इस अध्ययन से हमें यह भी ज्ञात हुआ कि पायी गयी एसएनपी (SNP) की सखंया व आवृति कांकरेज और राठी में सबसे अधिक व रेडसिंधी गो नस्ल में सबसे कम थी, इसके इलावा पहचान की गयी एसएनपी (SNP) में से केवल एक एसएनपी (SNP) का प्रोटीन संरचना पर हानिकारक प्रभाव पाया गया । इस बदलाव ने टीआइआर (TIR) डोमेन की संरचना एवं इसकी रोगाणुओ को पहचानने की क्षमता को भी प्रभावित किया। अतः टीएलर6 (TLR6) जीन व इसमे पायी जाने वाली एस एन पी (SNP) का अध्ययन भविष्य में रोग प्रतिरोध क्षमता को समझने के लिये एक तर्क संगत आधार प्रदान करेगा।

प्रस्तावना

भारत आदिकाल से ही विशाल पशुधन की अमूल्य निधि से उपहारित है। पृथ्वी पर सभी प्रजातियाँ अपने आप में एक विशाल आनुवंशिक गुणो का स्रोत होती हैं और यह विविधता उन्हें पर्यावरण में खुद को बनाये रखने में सक्षम बनाती है। जैव विविधता सभी प्राणियों में पायी जाने वाली विभिन्नता व परिवर्तनशीलता का दर्पण हैं और यह पृथ्वी की सबसे मूल्यवान प्राकृतिक उपहारों में से एक है। भारत की जैव विविधता को विश्व में भी एक बहुत ही अनोखा स्थान प्राप्त है। सदियों से, भारत जैव विविधता का एक प्रमुख केंद्र रहा है। हम अत्यंत भाग्यशाली है कि हमारे पास स्वदेशी पशुओं के जर्मप्लाज्म की विस्तृत विविधता हैं जो अपने वशिष्ट कृषि जलवायु क्षेत्रों में वितरित हैं । भारत के पालतू पशुओं के व्यापक स्पेक्ट्रम का प्रतिनिधित्व भारतीय देशी पशु नस्लें (37), भैंस (13), भेड़ (39), बकरी (23), पोल्ट्री (15), उंट (8), घोड़ो (6) के अलावा मिथुन और याक सहित कुछ दुर्लभ प्रजातियों द्वारा किया जाता हैं। ये नस्लें अपनी एक या एक से अधिक विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध हैं क्योंकि सदियों से हमारी अधिकांश स्वदेशी नस्लें एक निश्चित जलवायु परिस्थितियों के तहत उपयोगिता के लिये विकसित हुई

हैं और कुछ अद्धितीय गुण प्राप्त किए हैं। उनके यह गुण उन्हें दूसरी विदेशी नस्लों से अलग करते हैं और अपने वशिष्ट वातावरण के लिये उपयुक्त और उपयोगी बनाते हैं। प्राकृतिक रूप से विकसित होने के फलस्वरूप भारतीय नस्लें कठोर और चरम जलवायु परिस्थितियों के साथ–साथ स्ट्रेस में, प्रचलित उष्णकटिबंधीय बीमारियों के लिए विकसित प्रतिरोधक गुण, अनुपजाऊ फसल और कम गुणवत्ता वाले चारे और पीने वाले पानी की कमी के कारण जीवन यापन करने के लिए अच्छी तरह से सक्षम हो गई हैं। अतः विविध देशी जर्मप्लाज्म में कई ऐसे महत्वपूर्ण जीन शामिल हैं जो आर्थिक और पर्यावरण अनुकूलन लक्षण रखते हैं। भारतीय गौ धन में पायी जाने वाली जैव–विविधता उनकी विभिन्नता और लाखो वर्षो के लगातार विकास का परिणाम हैं।

भारतीय गौ नस्लें ऊष्णकटिबंधीय गर्मी को सहन करने तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति के लिये जानी जाती है। यह गौ नस्लें विदेशी नस्लों से अलग विधि से विकसित हुई (अलग एवोलूशनरी विकास) हैं। रोग प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करने में टोल लाइक रेसेप्टर (TLR) एक महतवपूर्ण भूमिका निभाते है। टीएलआर झिल्ली, बाध्य प्रोटीन वर्ग से सम्बंधित है तथा सहज और अनुकूली प्रतिरक्षा में मुख्य रूप से भूमिका निभाते है। यह टीएलआर (TLR), जन्मजात रक्षा प्रणाली जोकि संक्रामक रोगों के प्रति सुरक्षा का प्रथम चरण है को न केवल प्रवर्तित करने में सक्रिय रहते हैं बल्कि कुशल अनुकूली प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाओं के सूत्रपात भी है। टीएलआर (TLR) परिवार के सदस्य संक्रामक एजेंटों द्वारा व्यक्त आणविक पैटर्न पीएएमपी (PAMPs) को पहचान कर इम्यून प्रणाली को सक्रिय करते है तथा रोगों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। कई अध्ययनों से पता चला है कि टीएलआर (TLR) में होने वाली म्यूटेशन, इनकी पीएएमपी (PAMP) को समझने और पहचानने की क्षमता को कम कर सकती है जिससे सहज प्रतिरक्षा क्रिया भी प्रभावित हो सकती है। पशुधन में विशिष्ट रोगों के खिलाफ प्रतिरोध के संबंध में इन जीन लोसाई में आनुवंशिक परिवर्तन का वर्णन रोग प्रतिरोध के लिए आनुवंशिक चयन के मार्गदर्शन में उपयोगी हो सकता है। मानव में टीएलआर (TLR) जीन के भीतर एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपताओं एस एन पी (SNPs) विशिष्ट रोगों द्वारा संक्रमण के लिए संवेदनशीलता के साथ जुड़े पाये गये हैं [1,2] । एक अध्ययन से पता चला की टीएलआर 4 (TLR4), एलआरआर 5 (LRR 5) डोमेन में पाये जाने वाले दो मिस्सेंस म्यूटेशनों माइकोबैक्टीरियम एवियम पेराट्यूबरकुलोसिस (एमएपी) संक्रमण के साथ जुड़े थे। भारतीय गो पशुओं में अब तक 13 टीएलआर (TLR) जीन का पता लगाया जा चुका है जो कि विशेष रूप से विभिन्न प्रकार के जटिल रोगाणुओं से जुड़े आणुविक पैटर्न की पहचान करने में सक्षम है। पिछले कई वर्षो में सेल्युलर व आणविक अध्ययन के द्वारा ऐसी टीएलआर बहुरूपताओं को भी पहचाना गया है जो सेल्युलर प्रतिरक्षा प्रतिक्रियां और साइटोकिन के उत्पादन को प्रभावित करती हैं।

कोशिका में अपने स्थान व लिजेंड के आधार पर टीएलआर (TLR) जीन को दो समूहो में विभाजित किया गया है। पहले समूह में TLR1, TLR2, TLR4, TLR5, TLR6 तथा TLR10 को शामिल किया गया है जो कि कोशिका सतह पर व्यक्त होते है और सूक्ष्म जीवाणुओं से उत्पन्न यौगिकों की पहचान करते है। दूसरे समूह में उपस्थित टीएलआर (TLRs) इन्ट्रासेल्युलर ओर्गेनेल्स (intracellular organelles) की व्यक्त झिल्लियाँ होती हैं, तथा यह न्यूक्लिक एसिड (नाभकीय अम्ल) व न्यूक्लिोटाइड से उत्पन्न व्युत्पत्तियों की पहचान करते है। अनुकूली प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के विकास के लिए टीएलआर (TLR) के तीन मुख्य हिस्से हैं: बाह्य डोमेन जो की पीएएमपी (PAMP)की पहचान करता है, एक ट्रॅन्समेंब्रेन डोमेन और एक इंट्रासेल्युलर टोल / इंटरल्यूकिन 1 रिसेप्टर (TIR) डोमेन जो अणुओं से बींद करके सेलुलर प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को शुरू करता है [3] । सरंचना के आधार पर टाइप –I ट्रांसमैम्ब्रेन टीएलआर (TLRs) एक बहुकोशिकीय LLR से बने 20–30 केबी के अमीनो एसीड मोटीफ होते है [4]।

स्तनधारी जीवों में टीएलआर 1,6,10 (TLR–1,6,10) जीन एक ही गुणसूत्र (BTA6) पर स्थित है [5] और यह केवल 20–30 kb की इंटरजेनिक (intergenic) दूरी पर एक ही दिशा में उन्मुख हैं। पिछले अध्ययनों में टीएलआर1 (TLR1) व टीएलआर6 (TLR6) जीनों का मूल ओर्थोलोगस् (orthologus) पैतृक जीन को माना गया है। अभी तक हमें केवल टीएलआर (TLR) जीन की बुनियादी संरचना की जानकारी है लेकिन इसमें पायी जाने वाली बहुरूपताओं व उनकी अभिव्यक्ति से सम्बंधित हमारी जानकारी बहुत ही सीमित है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है टीएलआर6 (TLR6) जीन का लक्षण वर्णन और उसकी बहुरूपताओं (एसएनपी/SNP) की पहचान। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु 11 भारतीय नस्लों से 110 जानवरों के रक्त सैंपल (नमूनों) का तुलनतामक विश्लेषण किया गया है। इसके इलावा पहचान की गयी एसएनपी (SNP) का प्रोटीन संरचना पर प्रभाव भी देखा गया।

सामग्री एवं परीक्षण विधि

टीएलआर6 (TLR-6) जीन में न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता की एक समग्र रूपरेखा को प्रस्तुत करने के लिये विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों, विभिन्न उपयोगिता (दुधारू,द्विउदेशीय, भारवहन) और त्वचा के रंग (सलेटी,लाल) को प्रतिनिधित्व करने वाली देसी पशु नस्लों को अध्ययन के लिये चयनित किया गया। ब्योरा तालिका (1) एवं चित्र (1).

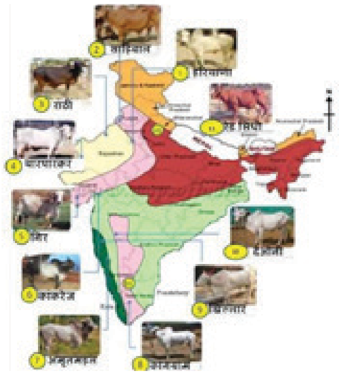

चित्र 1. अध्ययन में इस्तेमाल नस्लों का भारत में भौगोलिक वितरण

चयनित पशु नस्लों से सम्बंधित जानवरों के रक्त नमूनो को ईडीटीए (EDTA) लेपित ट्यूब में एकत्रित किया गया। रक्त नमूने एकत्रित करते समय यह भी ध्यान रखा गया कि यह जानवर पिछली तीन पीढ़ियों से आपस में अनुवांशिक रूप से सम्बंधित न हो। इन रक्त नमूनो से प्रोटिनेज–के–डाइजेशन (Prot-K-digestion) और फीनॉलः क्लोरोफॉर्म (phenol:Ch.) निष्कर्षण विधि द्वारा डीएनए (DNA) को पृथक किया गया तथा प्रथक किये गये डीएनए (DNA) को विश्लेषण के लिये प्रयोग में लाया गया। प्रत्येक नस्ल से एकत्रित किये गये डीएनए (DNA) नमूनो की संख्या, उनके आवास व कृषि जलवायु क्षेत्रों, उपयोगिता प्रकार व त्वचा के रंग को तालिका 1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1. वर्तमान अध्ययन में प्रयोग की गई पशु नस्लों का विवरण

नस्लें	संख्या	उपयोगिता	आवास क्षेत्र	कृषि जलवायु क्षेत्र	त्वचा का रंग
गिर	15	दुधारू	गुजरात	अर्धशुष्क	लाल
कांकरेज	14	दुधारू	गुजरात – राजस्थान	अर्धशुष्क/ शुष्क	भूरा
राठी	16	दुधारू	राजस्थान	शुष्क	लाल / भूरा
साहीवाल	15	दुधारू	पंजाब – राजस्थान	अर्धशुष्क/ शुष्क	लाल
थारपारकर	16	दुधारू	राजस्थान – गुजरात	अर्धशुष्क/ शुष्क	भूरा
देओंनी	17	द्विउदेशीय	आंध्रा प्रदेश, कर्नाटक	उष्णकटिबंधीय	भूरा
हरियाणा	14	द्विउदेशीय	हरियाणा	अर्धशुष्क	हल्का स्लेटी
अमृतमहल	15	भारवाहक	कर्नाटक/साऊथ इंडिया	अर्धशुष्क/ उष्णकटिबंधीय	भूरा

कांगयाम	16	भारवाहक	तमिलनाडु	अर्धशुष्क	भूरा
खिल्लार	17	भारवाहक	कर्नाटक	उष्णकटिबंधीय	भूरा
रेड सिंधी	15	दुधारू	ऑर्गनाइज्ड फार्म	शुष्क	लाल

पीसीआर और अनुक्रमण

टीएलआर6 (TLR6) जीन की पूर्ण आनुवंशिक विविधता का निर्धारण करने हेतु आवश्यक प्राईमर को साफ्टवेअर प्राईमर डिजाईनर के 'संस्करण 3' के उपयोग द्वारा निर्मित किया गया। टीएलआर6 (TLR6) के 4821बी.पी. लम्बे कोडिंग क्षेत्र को पीसीआर (PCR) क्रिया द्वारा प्रवर्धित करने के लिये आठ प्राईमर जोड़ो का प्रयोग किया गया तथा प्रवर्धन हेतु निम्न पॉलीमिरेज चेन प्रतिक्रियाओं को उपयोग में लाया गया:

तापमान (°F)	समय	चक्र
95	10 मिनट	1
95	30 सेकेंड	5
60	20 सेकेंड	
72	15 सेकेंड	
95	20 सेकेंड	30
58	20 सेकेंड	
72	30 सेकेंड	
72	10 मिनट	1

सभी PCR प्रतिक्रियाओं के लिये 50 नैनो ग्राम DNA का प्रयोग किया गया व प्रतिक्रिया मिश्रण की रचना इस प्रकार से की गई:– 1x बफर, 200µm डीएनटीपी (dNTP), 1µm प्रत्येक प्राईमर, 2.5 यूनिट्स हॉट स्टार्ट टाक पॉलीमिरेज तथा प्रत्येक प्रतिक्रिया की फाईनल मात्रा (25µl) को आणुविक जीव ग्रेड पानी द्वारा पूरा किया गया। पीसीआर (PCR) प्रतिक्रिया द्वारा प्रवर्धित डीएनए को 1% ईटीबीआर (ETBR) युक्त एग्रोज जेल (agarose gel) पर वैद्युतकणसंचलन विधि द्वारा विश्लेषित किया गया। उपयुक्त मॉलिकुलर वेट के पीसीआर एम्पलिकोन को (Quiquick) पीसीआर प्युरीफिकेशन किट के द्वारा शुद्ध किया गया तथा शुद्ध किये गये डीएनए (PCR उत्पादों) को ABI 3100 capillary sequencer मशीन द्वारा दोनो दिशाओं (Forword – Reverse) से अनुक्रमित किया गया। उचित जीनोटाइप को सत्यापित करने के लिये पीसीआर उत्पादों को PCR पीसीआर(R) 2 .1. 1–Topo(R) वेक्टर के साथ बाधित किया और फिर Topo TA क्लोनिंग(R) किट (Invitrogen) के द्वारा ट्रांसफार्म किया गया। ट्रांसफार्म की गई कोशिकाओं में से 6 सकरात्मक colonies को लेकर के प्लासमिड DNA को पृथक किया गया तथा इसको दोबारा अनुक्रमित किया गया। इस अनुक्रमण के लिये स्टैंडर्ड एम 13 प्राईमरों का प्रयोग किया गया।

सीकुएनसिंग वरजन 4.7 सॉफ्टवेर का प्रयोग करते हुये अनुक्रमणो का सरेखना करके उनका अनुक्रमसंपादन व भिन्नता विश्लेषण किया गया। सॉफ्टवेर द्वारा निर्धारित प्रत्येक एसएनपी (SNP) की पुष्टि क्रोमेटोग्राम निरीक्षण द्वारा की गयी है। प्राप्त रेपीटिटिव का मूल्याकंन रिपीट मास्टर सॉफ्टवेर के प्रयोग द्वारा किया गया। प्रत्येक मूल्याकित टीएलआर (TLR) से प्राप्त हैप्लोटाइप्स का ईएम एल्गोरिथ्म द्वारा निर्धारण किया गया। आणविक विकासवादी आनुवंशिक विश्लेषण (MEGA) सॉफ्टवेर का प्रयोग करते हुये एनजे (NJ) विधि द्वारा प्राप्त हेपलोटाइप्स का फाईलोजेनिक सीकुएंस विश्लेषण किया गया क्योकि इस विधि में विकास की सित्तिर दर की धारणा की आवश्यकता नहीं होती। डिस्टेन्स का अनुमान पी –डिस्टेन्स मॉडल के आधार पर किया गया व मानक त्रूटियों का अनुमान 1000 बूट स्ट्रेप प्रतिकर्ति के माध्यम से प्राप्त किया गया। एलआरआरएस (LRRS) डोमेन वास्तुकला को स्मार्ट साफ्टवेयर द्वारा उत्पन्न करके विभिन्न प्रजातियों के बीच एसएनपी (SNP) की तुलना की गई।

परिणाम और विवेचन

भारतीय देशी गौ पशुओं में TLR6 जीन की विशेषता एवम् रूपरेखा

भारतीय जेबू पशुओं में टीएलआर6 (TLR6) जीन जिसमें 2572 बी.पी. के 3 exon होते है, के पूर्ण विवेचन हेतु 2.7 के.बी. का अनुक्रमण डेटा को उत्पन्न किया गया। इस शोध के अंतर्गत 11 देशी व विदेशी नस्लों का तुलनातमक अनुक्रमण किया गया। टीएलआर6 (TLR6) जीन के अनुक्रमण का विश्लेषण करने पर हमने पाया कि न्यूक्लिओटाइड स्थिति 222,1019,1612 और 1852 पर क्रमशः चार माईक्रोस्टैलाइट रिपीट्स टीसी (3),एसी (3), एजी (3) व जीटी (3) उपस्थित है जबकि विदेशी नस्लों में यह माईक्रोस्टैलाइट रिपीट्स उपस्थित नहीं थे। इसी प्रकार भारतीय देसी गो नस्लों व विदेशी गो नस्लों के तुलनात्मक विश्लेषण से टीएलआर (TLR6)जीन में कुल 29 बहुरूपताओं की पहचान की गयी।(29/2575) जो कि ओसतन 83 बी.पी. पर एक बहुरूपता (SNP) को दर्शाती है (तालिका 2)। यह SNPs निष्पक्ष तौर पर भारतीय देशी पशुओं कि टीएलआर 6 (TLR6) जीन में पूर्ण रूप से वितरित थी (चित्र 2)।

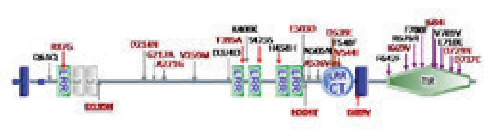

चित्र 2: टीएलआर 6 (TLR 6) जीन में एमिनो एसिड के रूपांतरों का स्थान

नॉन–सिनॉनिमस बहुरूपता में 3 को छोड़कर अधिकांश एमिनो एसीड की पोलेरैटी एक समान थी। पायी गई बहुरूपताओं को पब्लिक डाटा बेस से जांच करने पर पाया गया कि इनमें से 23 भारतीय गौ नस्लों के लिये नवीन थी।

तालिका 2. टीएलआर6 जीन में बहुरूपता की स्थिति, सिनॉनिमस (डीएस) और नॉन–सिनॉनिमस (डीएन) एमिनो एसिड बहुरूपता की सूची

एमिनो एसिड स्थिति	पेप्टाइड डोमेन	प्रोटीन क्षेत्र	एमिनो एसिड ध्रुवता परिवर्तन प/नप	उत्परिवर्तन/Mutation		नवीन
				डीएस	डीएन	
61	–	EC	प/प	√		√
87	एलआरआर	"	प /नप		√	√
135	√	"	प/प		√	√
214	–	"	प/प		√	–
217	–	"	नप/नप		√	√
221	–	"	नप/नप		√	√
259	–	"	नप/नप		√	√
374	–	"	प/प	√		√
395	एलआरआर	"	प/नप		√	√
400	–	"	प/प	√		√
425	एलआरआर	"	प/प	√		√

458	एलआरआर	"	प/प	√		√
503	–	"	नप/प		√	√
504	–	"	प/प		√	√
505	–	"	प/प	√		–
526	–	"	नप/नप		√	√
539	एलआर आर सी टी	"	प/प		√	√
540	एलआर आर सी टी	"	नप/नप	√		√
544	एलाआर आर सी टी	"	नप/नप		√	–
589	ट्रांस मेंब्रेन	टी एम	नप/नप		√	–
642	टी आइ आर	सीपी	नप/नप	√		√
669	टी आइ आर	"	नप/नप		√	√
676	टी आइ आर	"	प/प	√		√
684	टी आइ आर	"	नप/नप	√		√
700	टी आइ आर	"	नप/नप	√		–
701	टी आइ आर	"	नप/नप	√		–
710	टी आइ आर	ठ	प/प	√		√
729	टी आइ आर	ठ	प/प		√	√
737	टी आइ आर	ठ	प/प		√	

एएः एमिनो एसिड, एलआरआरः लियुसिन–रिच रिपीट्स, टीआइआरः टोल/इंटरलूकिन–1 रिसेप्टर–जैसे डोमेन, एसजीः संकेत पेपटाइड, ईसीः एक्सट्रासेल्युलर, टी एमः ट्रांस मेंब्रेन ट्रांसमेम्बरने, सीपीः साइटोप्लास्मिक, पःध्रुवीय, नपः गैर ध्रुवीय, डीएस : सिनॉनिम्स, डीएन : नॉन–सिनॉनिमस.

अध्ययन करने पर पाया गया कि टीएलआर6 (TLR6) जीन में पायी गयी एसएनपी (SNPs) की संख्या (27) कांकरेज व राठी नस्लों में सबसे अधिक (तालिका 3, चित्र 3) थी व इनकी कुल आवृति 0.90 थी। एसएनपी (SNPs) की न्यूनतम संख्या (23) रेडसिंधी में पायी गई व इसकी कुल आवृति (0.074) थी।

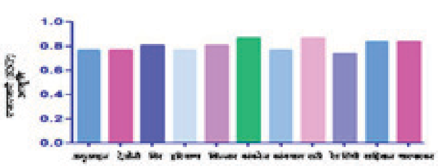

चित्र 3ः भारतीय देशी नस्लों में एसएनपी (SNP) आवृत्ति

पहचान की गई 29 बहुरूपताओं में से 8 एस एन पी (SNPs) सभी विश्लेषित पशुओं में उपस्थित थी (आवृति1.00) साथ ही इसमें कोई लॉगं इंटरस्पर्स्ड एलिमेंट्स या दूसरा रिपेटिटिव एलिमेंट्स भी नहीं पाया गया। यह डाटा सी बरी *एट ऑल*, (2008), के अनुसार है जिन्हे कोडिंग क्षेत्र में 25 एस एन पी (SNP) मिले, इन 25 में से 10 नॉन–सिनॉनिमस थे [8]. हालांकि, मार्को मेरीओटी., (2009), को गोजातीय टी एल आर 6 में केवल 8 एस एन पी मिले [9].

एमिनो एसिड प्रतिस्थापन का अनुमानित प्रभाव

पॉलीफेन (POLYPHEN) और सिफ्ट नामक (SIFT) सॉफ्टवेर का प्रयोग करते हुए एसएनपी द्वारा एनकोडेड

एमिनो एसिड प्रतिस्थापन का प्रोटीन सरंचना पर क्या प्रभाव पड़ा उसका मूल्यांकन किया गया और यह पाया गया की पहचान की गयी 16 नॉन सिनॉनिम्स में से 13 एस एन पी परिवर्तनों का प्रोटीन सरंचना पर कोई प्रभाव नहीं था, 2 एस एन पी प्रोटीन सरंचना पर संभावित हानिकारक प्रभाव नही था (चित्र 4) जबकि 1 एस एन पी का प्रभाव हानिकारक पाया गया।

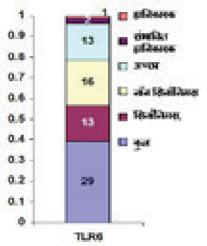

चित्र 4: एफेक्ट ऑफ एसएनपी (आइएलई589 Val)(Ile589Val) आन टीएलआर (TLR) प्रोटीन टीआइआर (TIR) डोमेन सरंचना

लिंकेज डिसएक्कुईलीब्रियम विश्लेषण

अधिकतमकरण एल्गोरिथ्म का प्रयोग करके यह देखा गया की 29 एस एन पी कुल 58 हैप्लोटाइप्स को करेस्पाँड करते है। न्यूनतम आवृत्ति हेपलोटाइप्स टीएलआर 6–14 (TLR6–14)(0.02) जबकि अधिकतम आवृत्ति हेपलोटाइप्स टीएलआर6–17 (TLR6–17) (0.27) के लिए पायी गयी है। इन हेपलोटाइप्स में से किसी की भी बोस टॉरस (AJ618974, AJ620670, EU746466, EU746469, EU746470, EU746471, NM_001001159) हेपलोटाइप्स से सटीक समानता नहीं थी। अतः इन हेपलोटाइप्स का उपयोग करके भारतीय गौपशुओं और विदेशी गौपशुओं में अंतर किया जा सकता है। इन हेप्लोटाइप में न्यूनतम आवृत्ति हॅप्लोटाइप टी एल आर 6–14 के लिए तथा अधिकतम आवृत्ति हेपलोटाइप टी ल आर 6–1 हेप्लोटाइप के लिये पायी गई।

एलडी की इंट्राजेनिक पैटर्न की परीक्षा चार युग्मक शासन के आवेदन और पुनर्संयोजन के अनुमान द्वारा की गई। विश्लेषण से भारतीय गो पशु टीएलआर6 में पांच हेप्लोब्लॉक का पता चला तथा इन 5 में से 2 हेप्लोब्लॉकों में एलडी काफी सशक्त था। एलडी प्लॉट और हेप्लॉब्लोकक्स चित्र 5 में प्रस्तुत हैं।

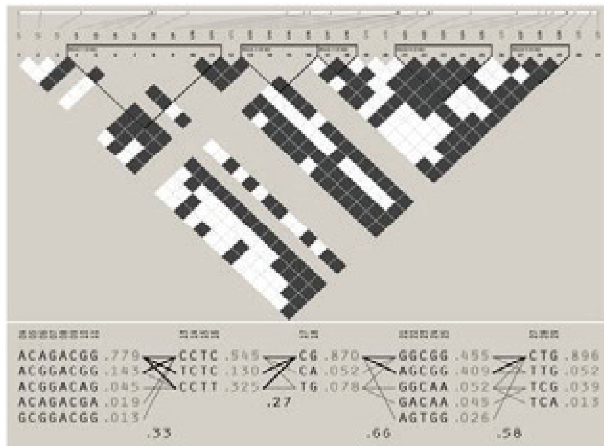

चित्र 5. टीएलआर6 में हेप्लोटाइप ब्लॉक

डोमेन संरचना

टीएलआर एक व्यक्ति को सहज प्रतिरक्षा प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्तनधारियों के टीएलआर में लियुसिन रिच रिपीट्स (एलआरआर/LRR) का अलग–अलग पैटर्न पाया गया है। एलआरआर वायरस से लेकर यूकैर्योसाइटों तक की प्रोटीन में पाए जाते हैं और प्रोटीन–प्रोटीन गठन के लिए एक संरचनात्मक ढांचा प्रदान करते हैं। सक्रिय होने पर, टीआइआर डोमेन साइटोप्लास्मिक एडाप्टर प्रोटीन MyD88 और टोलिप को संकेत देता है जो विभिन्न काइनसेस के साथ सहयोगी सहजोग करके सिग्नलिंग कास्केड्स स्थापित करते हैं। भारतीय गौपशुओं के टीएलआर में एलआरआर डोमेन पैटरनिंग की अन्य स्तनधारी प्रजातियों (मानव, माउस, शूकर और गौपशु) के साथ तुलना की गई। जैसी कि अनुमान था कि भारतीय गोजातीय टी एल आर डोमेन संरचना अन्य स्तनधारी प्रजातियों के टी एल आर डोमेन संरचना के समान ही थी। तुलना करने पर पता चला कि सारे एल आर आर डोमेन समान संरचनात्मक अनुरूपता

साझा करते हैं तथा विभिन्न प्रजातियों नें तीन क्षेत्र संरक्षित (चित्र 3) थे।

इन स्तनधारी प्रजातियों के एमआरएनए (mRNA) के बीच इस डिग्री की समानता के बावजूद, यह अभी तक पता नहीं है कि एलआरआर डोमेन पैटरनिंग के संबंध में प्रोटीन डोमेन में कितनी समानता या असमानता है। उत्पन्न जानकारी भिन्न एल आर आर (LRR) डोमेन क्षेत्रों की कार्यक्षमता के अलावा इन संरक्षित पैटर्न के महत्व का पता लगाने में भी मदद करेगी। इसके अलावा अध्ययन भिन्न LRR डोमेन क्षेत्रों की कार्यक्षमता के अलावा इन संरक्षित पैटर्न के महत्व का पता लगाने के लिए आवश्यक है।

कुल मिलाकर, अध्ययन से यह पता चलता है कि भारतीय पशुधन के भीतर पर्याप्त विविधता उपस्थित है और यह विदेशी नस्लों से भिन्न है। पहचानी गयी एस एन पी भविष्य में भारतीय नस्लों से सम्बंधित संभावित एसोसिएशन अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध होंगी।

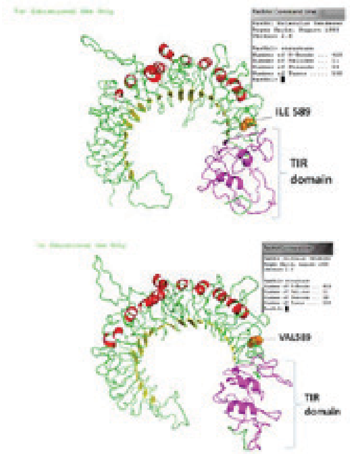

चित्र 6. ल्यूसिन रिपीट्स युक्त डोमेन संरचना की विभिन्न स्पीशीस में तुलना

तालिका 3. भारतीय पशु नस्लों में टी एल आर जीन के लिये उत्परिवर्तन सूची

न्यूक्लिओटाइड स्थिति	एलील	एमिनो एसीड स्थिति	एमिनो एसीड	SNP जीनोटाइपः भारतीय देशी गौ नस्लें		SNP आवृत्ति [n/N]	X= [b/B]
183	ए/जी	61	ग्लूटामाइन/ ग्लूटामाइन	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.92	1.00
259	ए/जी	87	अर्जिनिन / ग्लाईसिन	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, साहीवाल, थारपारकर	0.78	0.91
403	जी/सी	135	एसपर्टिक एसीड/ हिस्टीडिन	सीः	अमृतमहल, देवनी, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, साहीवाल, थारपारकर	0.27	0.82
640	जी/ए	214	एसपर्टिक एसीड / एस्पराजीन	एः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.99	1.00
650	जी/सी	217	ग्लाईसिन / एलानीन	सीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00

651	जी/ए	217	ग्लाईसिन / एलानीन	एः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, साहीवाल, थारपारकर	0.81	0.91
662	सी/जी	221	एलानीन / ग्लाईसिन	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम , राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00
775	जी/ए	259	वैलीन / मिथ्योनिन	एः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00
1122	टी/सी	374	एसपर्टिक एसीड / एसपर्टिक एसीड	सीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00
1183	ए/जी	395	थ्रीओनिन / एलानीन	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.96	1.00
1200	जी/ए	400	लाईसीन / लाईसीन	एः	कांकरेज	0.03	0.18
				आरः	थारपारकर		
1275	टी/सी	425	सीरीन / सीरीन	सीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्ला , कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.92	1.00
1374	सी/टी	458	हिस्टीडिन / हिस्टीडिन	टीः	गिर, हरियाणा, कंगायम, राठी, थारपारकर	0.14	0.45
				वाइ :	थारपारकर		
1509	ए/सी	503	एलानीन / एसपर्टिक एसीड	सीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00
1510	सी/टी	504	हिस्टीडिन / टाईरोसिन	टीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00
1515	टी/सी	505	एस्पराजीन / एस्पराजीन	सीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.68	1.00
1577	सी/टी	526	एलानीन / वॅलिन	टीः	रेड सिंधी	0.21	0.36
				वाइ :	गिर, कांकरेज, कंगायम, रेड सिंधी		

1578	जी/ए	526	एलानीन / वॅलिन	एः	कंगायम, साहीवाल	0.08	0.27
				आरः	कंगायम, राठी, साहीवाल		
1617	सी/जी	539	एसपर्टिक एसीड / ग्लूटामिक एसीड	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, साहीवाल, थारपारकर	0.87	1.00
				एसः	अमृतमहल, देवनी, गिर, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर		
1620	टी/सी	540	फिनाईलएलानीन / फिनाईलएलानीन	सीः	अमृतमहल, देवनी, खिल्लार, कांकरेज, थारपारकर	0.18	0.73
				वाइ :	कांकरेज, राठी, साहीवाल		
1630	जी/ए	544	वॅलिन / आईसोल्यूसिन्न	एः	गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम , राठी, थारपारकर	0.69	1.00
				आरः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार , कांकरेज, कंगायम , राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर		
1765	ए/जी	589	ग्लूटामिक एसीड / वॅलिन	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.97	1.00
				आरः	कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल		
1926	सी/टी	642	फिनाईलएलानीन / फिनाईलएलानीन	टीः	कांकरेज	0.05	0.36
				जीः	खिल्लार, राठी, साहीवाल		
2005	ए/जी	669	ग्लूटामिक एसीड / वॅलिन	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, साहीवाल, थारपारकर	0.96	1.00
				आरः	कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी		
2028	ए/जी	676	आर्जिनिन / आर्जिनिन	जीः	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम , राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.96	1.00
				आरः	कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल		

2052	टी/सी	684	ग्लूटामिक एसीड / आईसोल्यूसिन्न	सी:	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	0.94	1.00
2100	टी/सी	700	फिनाईलएलानीन / फिनाईलएलानीन	सी:	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, साहीवाल, थारपारकर	0.94	1.00
				वाइ:	रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर		
2103	टी/सी	701	वॅलिन / वॅलिन	सी:	रेड सिंधी	0.06	0.09
				वाइ:	रेड सिंधी		
2130	जी/ए	710	एलानिन / ग्लूटामिक एसीड	ए:	रेड सिंधी	0.01	0.09
2185	जी/ए	729	असपार्टिक एसीड / अस्पराजीन	ए:	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00
2211	टी/ए	737	असपार्टिक एसीड / ग्लूटामिक एसीड	ए:	अमृतमहल, देवनी, गिर, हरियाणा, खिल्लार, कांकरेज, कंगायम, राठी, रेड सिंधी, साहीवाल, थारपारकर	1.00	1.00

सन्दर्भ

1. मेडजीहितोव, आर.; जूनियर जेनवे, सी.ए. 2000. अंतर्जात प्रतिरक्षा. एन इंग्ल. जे मेड., 343, 338–344.
2. एडेरर्म, ए.य उलेविट्च, आर.जे. 2000. सहज प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के शामिल होने में टोल लाइक रिसेप्टर्स. प्रकृति, 406, 782–787 .
3. मूजिओ, एम.य पोलेंटरुत्ति, एन.; बोसीसीओ, डी.य प्रह्लदान, एम. के.य मंटोवानी, ए. 2000. टोल लाइक रिसेप्टर्स: विभिन्न व्यक्त और विभिन्न लीउकोस्यटेस द्वारा विनियमित रहे हैं कि प्रतिरक्षा रिसेप्टर्स की बढ़ती परिवार. जे ल्युकोसैट बॉय., 67, 450–456.
4. जिन, एम.एस.य किम, एस.ई.य हेओ, जे.वाई.य ली, एम. ई.य किम, एच.एम.य पैक, एस.जी.य ली, एच.य ली, जे.ओ., 2007. टी एल आर 1–टी एल आर 2 (TLR1-TLR2) हेटरोडाइमर के क्रिस्टल संरचना एक सप्ताह में तीन अस्यलेटेड लिपोपेपटाइड के बंधन से प्रेरित. सेल, 130, 1071–1082.
5. म्कगुइरे, के.य जोन्स, एम.य वेरलिंग, डी.य विलियम्स, जे. एल.य ग्लास, ई. जे.य जांन, ओ. 2005. सभी 10 की ओ विकिरण संकर मानचित्रण गोजातीय टोल की तरह रिसेप्टर्स की विशेषता. इम्मुनोबीओलॉजी. इम्मुं. एनी. जेनेटिक्स., 37, 47–50.
6. पांडे, एस.य अग्रवाल, डी.के. 2006. उभरते रुझान: टोल लाइक रिसेप्टर्स की इम्मुनोबीओलॉजी. इम्मुं. सेल बॉय., 84, 333–341.
7. मूचा, आर.य भिडे, एम.आर.य चकुरकर, ई.ब.य नोवाक, एम.य सीनियर मिकुला, आई. 2009. टोल लाइक रिसेप्टर्स टीएलआर 1 (TLR1), टीएलआर

2 (TLR2) और टीएलआर (TLR4) जीन म्यूटेशन और माइकोबैक्टीरियम एविउम सबस्पीशीस को प्राकृतिक प्रतिरोध मवेशियों में पेराट्यूबरकुलोसिस संक्रमण. डॉक्टर. इम्मुणॉल. इम्मुनोपेथाओल., 128, 381–388.

8. मेरीओटी, एम.य विल्यम्स, जे. एल.य डयूनर, एस.य वालेंटीनी, ए.य परिसेट, एल. 2009. मवेशी टोल लाइक रिसेप्टर टीएलआर (TLR)–2, –4, और –6 जीन की बहुरूपताओं. विविधता, 1, 7–18; Doi: 10.3390 / d1010007.

9. सीबरी, सी.एम.य वोमैक जे.ई. 2008. गोजातीय पेप्टीडोग्लायकन मान्यता प्रोटीन 1 और टोल लाइक रिसेप्टर्स 2 और 6 के लिए अनुक्रम परिवर्तनशीलता और प्रोटीन डोमेन आर्किटेक्चर का विश्लेषण. जीनोमिक्स, 92, 235–245.

पशुधन प्रकाश 2016 में प्रकाशन हेतु लेख आमंत्रण

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा **'पशुधन प्रकाश'** पत्रिका का प्रकाशन प्रतिवर्ष किया जाता है। पशु विज्ञान एवम् पशु चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत लेखकों से अनुरोध है कि इस पत्रिका में प्रकाशन हेतु पशु पालकों, शोधकर्त्ताओं एवम् छात्रों के लिए उपयोगी मौलिक लेख **भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो** के राजभाषा एकक को ए–4 साईज के पन्नों पर टंकित कराकर **31 मार्च, 2016** तक भेज दें। लेख में यदि कोई छायाचित्र है, तब उनकी **'जे.पी.ई.जी.'** फाईल लेख के साथ सी.डी. में या ई–मेल द्वारा अवश्य भेजें। लेख ई–मेल द्वारा pashudhanprakash@gmail.com पते पर भी भेजे जा सकते हैं। कृपया निम्न प्रमाण पत्र लेख के साथ अवश्य भेंजे:–

प्रमाणित किया जाता है कि संलग्न लेख " (लेख का शीर्षक)........ ", (लेखकों के नाम)........ द्वारा लिखित एक मौलिक रचना है तथा इस लेख को इससे पूर्व किसी अन्य पत्रिका अथवा जर्नल में प्रकाशित नहीं करवाया गया है।

आपके द्वारा अध्ययन किये गये पालतू पशु/पक्षियों के गैर पंजीकृत समूहों पर आधारित लेखों को हम प्राथमिकता देते हैं।

–सम्पादक मंडल

पूर्व वर्ष में शोध पत्र लेखन प्रतियोगिता में तृतीय स्थान

राष्ट्रीय जीन बैंक के प्रयोग व पाँच वर्ष की प्रबंधन गतिविधियों सहित आर्थिक विश्लेषण

प्रताप सिंह पंवार

भाकृअनुप– राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल (हरियाणा) – 132001

सारांश

राष्ट्रीय जीन बैंक के उपयोग तथा पांच वर्ष की प्रबंधन गतिविधियों सहित आर्थिक विश्लेषण करने का उद्देश्य आगामी वर्षो में तरल नत्रजन की अनुमानित आवश्यकता, आपूर्ति व लागत की गणना करना था। इस गणना के अनुरूप वर्ष 2009–10, 2010–11, 2011–12, 2012–13 व 2013–14 के दौरान प्रतिलीटर तरल नत्रजन के साथ लगभग क्रमशः 27, 30, 35, 34 व 33 डोसेस को अनुरक्षित किया। प्रतिवर्ष औसतन व्यय प्रतिलीटर क्रमशः 23, 23, 10, 8 और 10 रूपये रहा। प्रतिवर्ष डोसेस अनुरक्षण में तरल नत्रजन का वास्तविक खर्च (रु) क्रमशः 106678, 99501, 37370, 32457 व 38661 हुआ है। यह विश्लेषण जीन बैंक के प्रबंधन व अग्रिम बजट बनाने में अति महत्वपूर्ण है।

प्रस्तावना

वर्ष 2002 में राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल द्वारा राष्ट्रीय जीन बैंक की स्थापना लुप्तप्राय जानवरों की प्रजातियों की रक्षा करने की एक प्रक्रिया है। जिसका उद्देश्य जर्मप्लाज्म के एक्स–सीटू संरक्षण के माध्यम से स्वदेशी पशुधन जैव विविधता को सतत् प्रयोग में रखना तथा लुप्तप्राय पशु नस्लों के लिए विलुप्त होने के खिलाफ एक बीमा भी है। अब तक लगभग 311 प्रजनन मेल्स से संबंधित एक लाख उन्नतीस हजार दो सौ तैंतीस (1,29,233) गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊंट, याक, और घोड़े आदि महत्वपूर्ण नस्लों के जमे हुए वीर्य अंश को भावी पीढ़ी के लिए संग्रहित किया गया है । मुर्राह सांड की बायोमैट्री अध्ययन के अनुरूप वीर्य में शुक्राणु के सिर की चौड़ाई, क्षेत्र व परिधि अन्य भारतीय भैंसो की नस्ल के सांडों से तुलनात्मक कम रहती है। जबकि मुर्राह सांड में शुक्राणु पूंछ की लम्बाई अधिक होती है (अग्रवाल आदि, 2007)। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य दशा और वीर्य की गुणवत्ता के मापदण्ड भी भविष्य में संदर्भ के लिए सूचीबद्ध) है ।

यह जीन बैंक सिर्फ देश में लुप्तप्राय नस्लों को बचाने में ही नहीं बल्कि पशु सरोगेट मां के माध्यम से अपने लाइव स्टाक जनसंख्या को बढ़ाने के लिए विभिन्न संगठनों की मदद करने के लिए भी प्रयासरत है। इस पहल का उद्देश्य अपने पथ में नस्लों की आनुवंशिक परिवर्तनशीलता, संरक्षण को बनाए रखने और उनकी उत्पादकता को बढ़ाने के लिए है ।

जैव चोरी होने पर अपने देश की पशु नस्ल के पक्ष में कानूनी दावा प्रतुति के दौरान जीन बैंक में संरक्षित जर्मप्लास्म की सहायता से तुलनात्मक दावे को परिपुष्ट करने के लिये भी जीन बैंक का महत्व है। आईवीएफ के माध्यम से गायों और भैंसों की अधिक दूध देने वाली किस्मों को विकसित करने के लिए अच्छी गुणवत्ता का वीर्य प्राप्त करने के लिए भारत के राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान जैसे संगठनों की मदद करने में यह जीन बैंक सक्षम हैं। इसी तरह, पोल्ट्री और अन्य डेरी किसान अधिक दूध और तेजी से बढ़ रही नस्लों को विकसित करने के लिए भी इस जीन बैंक की मदद ले रहे हैं। इस रूप में जीन बैंक अच्छी तरह से राजस्व बढ़ाने के लिए डेरी उद्योगों की मदद कर रहा है। वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए, एन.बी.ए.जी.आर. द्वारा वीर्य की एक खुराक के लिए 10 रुपये से 20 रुपए तक लेना संदर्भ

के अनुरूप है। इसके अलावा, यह जीन बैंक अच्छी तरह से गैर सरकारी संगठनों के साथ भी सहयोग कर रहा है।

सामग्री एवं क्रिया –विधि

पाँच वर्ष के दौरान (अगस्त 2009 से जुलाई 2014 तक) तरल नत्रजन की आवश्यकता , आपूर्ति व लागत के आंकड़े जीन बैंक में अनुरक्षित स्टाक रजिस्टर से रिकार्ड करके एक्सेल वर्क सीट पर इन्द्राज किये गए। तीनो तरह के प्रत्येक वर्ष के आंकड़ों को सॉफ्टवेयर एक्सेल फार्मूले से जोड़ किया गया। वीर्य डोसेस का विवरण जीन बैंक के आंकड़ा पट्ट से रिकार्ड किया गया। तरल नत्रजन की अधिक सप्लाई की मात्रा वर्षवार साधारण गणना से प्राप्त हुई। आर्थिक विश्लेषण में भी साधारण गणना का प्रयोग किया है। वर्ष वार कुल नत्रजन क्रय के वास्तविक खर्च में तालिका–2 के कोष्ठक में अंकित मात्रा का खर्च शमिल नहीं है। सप्लायर द्वारा नत्रजन न देने की अवस्था में बाजार की विभिन्न दरों पर तरल नत्रजन का क्रय भी आंकड़ों में शामिल है।

तालिका 1. जीन बैंक में वीर्य डोसेस का विवरण

क्र. स.	प्रजाति	डोसेस की संख्या
1	गाय	66054
2	भैंस	40103
3	ऊंट	00928
4	याक	00460
5	घोड़े व फ्रेंच गधे	01220
6	बकरी	12093
7	भेड़	08375
कुल	07	129233

परिणाम एवं विवेचना

तालिका 2 से प्रकट है कि वर्ष 2009 –10 के दौरान तरल नत्रजन की आवश्यकता 4712 लीटर थी। लेकिन 2010 –11 से 2013 –14 की अवधि में आवश्यकता कम रही है। आवश्यकता के ट्रेंड अनुरूप निरन्तर 2011–12 तक कम तरल नत्रजन का प्रयोग करके जर्मप्लास्म को सुरक्षित रखा गया।

तालिका 2. ब्यूरो के जीन बैंक में प्रतिवर्ष तरल नत्रजन की अनुमानित लागत, आवश्कता व आपूर्ति

क्र. स.	वर्ष	तरल नत्रजन की अनुमानित आवश्कता (ली.)	तरल नत्रजन की सप्लाई (ली.)	तरल नत्रजन की कुल लागत (रुपये)
1	2009–10	4712	5619 (+907 ली.)	127234
2	2010–11	4254	10096 (+5842 ली.)	236163
3	2011–12	3689	9399 (+5710 ली.)	95228
4	2012–13	3823	8337 (+4514 ली.)	70811
5	2013–14	3941	13346 (+9405 ली.)	131028

कालम 4 के कोष्ठकों में प्रत्येक वर्ष तरल नत्रजन के अधिक आपूर्ति की मात्रा अंकित है।

वर्ष 2009–10, 2010–11, 2011–12, 2012–13 व 2013–14 के दौरान प्रतिलीटर तरल नत्रजन के साथ क्रमश : 27.42, 30.37, 35.03, 33.80 व 32.39 डोसेस को अनुरक्षित रखा गया। प्रतिवर्ष औसतन व्यय प्रतिलीटर क्रमश: 22.64, 23.39, 10.13, 8.49 व 9.81 रुपये रहा है। प्रतिवर्ष डोसेस अनुरक्षण में प्रयोग तरल नत्रजन का वास्तविक खर्च (₹) क्रमश: 106678, 99501, 37370, 32457 व 38661 हुआ है। यह विश्लेषण जीन बैंक के

अनुरक्षण में उत्कृष्ट प्रबंधन रणनीति के प्रयोग को भी दर्शाता है।

तालिका 3. प्रत्येक वर्ष तरल नत्रजन की अधिक सप्लाई के प्रयोग व कारण

क्र. स.	वर्ष	प्रयोग व कारण
1	2009–10	भण्डारण व सुपुर्दगी के दौरान T–55 & PM–54 कन्टेनर को आवेश करने के दौरान नियमित वाष्पन में ।
2	2010–11	1 के अतिरिक्त एक हजार लीटर के तरल नत्रजन भण्डारण टैंक को आवेश करने तथा विभिन्न गौशालाओं में तरल नत्रजन में वीर्य डोसेस सुरक्षित रखने के लिए आवधिक वितरण हेतु।
3	2011–12	1 तथा विभिन्न गौशालाओं में तरल नत्रजन में वीर्य डोसेस सुरक्षित रखने के लिए आवधिक वितरण हेतु ।देश के अन्य केन्द्रो से वीर्य लाने के दौरान प्रयोग।
4	2012–13	3 के अनुसार ।
5	2013–14	4 के अनुसार तथा बकरे के अंडकोषों से जीन बैंक में प्राप्त वीर्य की डोसेस के प्रयोगिक हिमीकरण में तरल नत्रजन का प्रयोग ।

निष्कर्ष

पांच वर्ष के दौरान जीन बैंक के अनुरक्षण में नत्रजन की मात्रा व क्रय में उपयोग राशि की गणना से आगामी वर्षो में अनुपातिक नत्रजन की आवश्यकता, आपूर्ति व लागत के ब्यौरे से अग्रिम बजट बनाने में यह विश्लेषण उपयोगी होगा। तरल नत्रजन की जीन बैंक में माँग व सप्लाई के प्रबंधन की रणनीति में भी यह विश्लेषण उपयोगी रहेगा। जीन बैंक में कार्यरत तरल नत्रजन के माँग अधिकारी के अग्रिम संज्ञान व स्टॉक अनुरूप ही डोसेस अनुरक्षण के अतिरिक्त तरल नत्रजन का प्रयोग सुनिश्चित करने की सन्तुति भी इस शोध पत्र के अनुरूप है।

संदर्भ

1. Panwar P.S. 2005. विभिन्न पशु स्पैसिज की देशी नस्लों का फर्टिलिटी स्तर ज्ञात करने के लिए फ्रोजन सीमन का मूल्यांकन SOCDAB] National Symposium held at NBAGR Karnal, Feb., 10–11. 2005, DAD–137 , pp 175.

2. Panwar P.S. 2005. पशु विविधता सरंक्षण में वीर्य बैंक की भूमिका. SOCDAB, National Symposium held at NBAGR Karnal, Feb.,10–11, 2006, DAD–344, pp 212.

3. Panwar P.S and Panwar Vinita 2007. गोवंश की देशी नस्लों के संवर्धन व सरंक्षण में गोशालाओं का प्रयोग, SOCDAB, National Symposium held at Ranchi, Feb., 8–9, 2007 DAD–302, pp 296–299.

4. R.A.K. Aggarwal, S.P.S. Aslawat and Panwar P.S. 2007. Biometry of Frozen Thawed Sperm from Eight of Indian Buffaloes (Bubalus Bubalis). Theriogenology, 68: 682–686.

5. Panwar P.S.R.A.K. Aggarwal and N.K. Verma. 2008. A feel for the conservation of AnGR, Biotechnological Tools For Genome Analysis (Training Manual) of NBAGR, Karnal.

6. Panwar P.S. Kumar Dinesh and Joshi B,K. 2009. Utilization of Genetic Resources for Sustaining the Livestock Biodiversity in India National Symposium to be held at NBAGR Karnal Feb, 12–13, 2009.

7. Joshi B,K; Panwar P.S. and Kumar Dinesh. 2010. भारतीय पशु आनुवांशिक संसाधन की स्थिति एवं चुनौतियाँ, पशुधन प्रकाश (ISSN 0976-4569) , पृष्ठ 8–15.

8. Panwar, P.S. 2011. भारत में देशी गायों की संख्या के घटने – बढ़ने के छतीस कारण, सजग समाज, मासिक पत्रिका, नवम्बर माह , अंक –11, करनाल, पृष्ठ संख्या 20.

9. Panwar, P.S.; Vohra Vikas and Singh Rajbir. 2013. भारत के पशुधन प्रजातियों में वीर्य संरक्षण के लिए फ्रेमवर्क । 14वीं राष्ट्रीय कृषि विज्ञान संगोष्ठी (दिनांक 14–16 दिसम्बर 2013), held at CIFA, Mumbai.

श्रेष्ठ लेखों को पुरस्कार

"पशुधन प्रकाश" पत्रिका के **पंचम अंक** में प्रकाशित तीन सर्वश्रेष्ठ लेखों को भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। सर्वश्रेष्ठ लेखों का चयन तीन अलग निर्णायकों द्वारा प्रदत्त अंकों के आधार पर किया जाता है।

पशुधन प्रकाश: पंचम अंक (2014) के पुरस्कृत लेख–

प्रथम: "राजस्थान राज्य के अवर्णित एवं महत्वपूर्ण गोवंशीय समूहः नारी तथा सान्चोरी"– डा. पी.के. सिंह,डा. आर.के. पुण्डीर, डा. डी.के. सदाना एवं करुणा असीजा

द्वितीय: "लेह–लद्दाख क्षेत्र की कठिन परिस्थितियों में पशु आनुवंशिक संसाधनों का मूल्य और महत्व"– डा. मोनिका सोढ़ी, प्रीति वर्मा, संदीप मान, प्रभात कुमार, विजय भारती, प्रवेश कुमारी एवं मनीषी मुकेश

तृतीय: "रोहिलखंडी बकरीः उत्तर प्रदेश की अभूतपूर्व नस्ल"– डा. बी.एच.एम. पटेल, डा. दीपक उपाध्याय, डा. जी.के. गौड़ एवं डा. भारत भूषण

"उत्तर प्रदेश में बकरी पालन की उपयोगिता"– डा. सत्येन्द्र पाल सिंह, डा. शिल्पी गोयल एवं डा. संजीव सिंह

भाकृअनुप–राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, करनाल की वर्ष 2014–15 के दौरान, राजभाषा के प्रचार प्रसार हेतु आयोजित हिंदी आयोजनों की विस्तृत रिपोर्ट

राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार हेतु की जाने वाली विभिन्न गतिविधियों के अंतर्गत राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरों में दिनांक 23.05.2014 को पूर्वान्ह 3–30 बजे "पर्यावरण क्षरण से मानव जीवन पर दुष्प्रभाव" विषय पर एक हिन्दी व्याख्यान का आयोजन किया गया, जिसके अंतर्गत डा. अमिताभ सिंह, प्रोफेसर कैमिस्ट्री, डा. प्रेम तिवारी प्रोफेसर हिन्दी, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा श्री नरेश रंगा, डी.एफ.ओ. कर विषय पर व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित किये गये। इस व्याख्यान कार्यशाला का आयोजन श्री राजीव रंजन, शुरूआत समिति करना तथा वन विभाग के सहयोग से राष्ट्रीय पशु आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो करनाल में किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक डा. आर्जव शर्मा ने की।

संस्थान में राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार व स्टाफ सदस्यों को अपना दैनिक राजकीय कार्य राजभाषा में करने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से चलाई जाने वाली तिमाही हिन्दी व्याख्यान/कार्यशालाओं के अंतर्गत दिनांक 28.07.2014 को पूर्वान्ह 11.00 बजे समिति कक्ष में एक हिन्दी व्याख्यान का आयोजन किया गया। इसके अंतर्गत संस्थान द्वारा प्राधिकृत होम्योपैथिक चिकित्सक डा. के.एस. पोसवाल को "होम्योपैथिक पद्धति द्वारा रोगों से निदान" विषय पर व्याख्यान किया गया।

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी हिंदी दिवस के अंतर्गत ब्यूरो में 12–20 सितम्बर 2014 तक राजभाषा के प्रचार–प्रसार व क्रियान्वयन के प्रति स्टाफ सदस्यों में जागरूकता बढाने हेतु विभिन्न हिंदी कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। कार्यक्रम आयोजन समिति के अध्यक्ष डॉ. आर. एस. कटारिया तथा सदस्यों में डॉ. अनिल कुमार मिश्र, डॉ. विकास वोहरा, डॉ. रेखा शर्मा व श्री सतपाल रहे। इस अवधि के दौरान आयोजित की गयी विभिन्न गतिविधिओं का विवरण निम्नलिखित है।

दिनांक 12–9–2014 को स्टाफ के सभी वर्गों हेतु शब्दार्थ व अनुवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमे वैज्ञानिकों, तकनीकी व प्रशासनिक वर्ग के सदस्यों ने व निदेशक महोदय सहित कुल 10 प्रतियोगियों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार निदेशक डॉ. आर्जव शर्मा द्वितीय पुरस्कार संयुक्त रूप से डॉ. साकेत

निरंजन व श्री कर्मबीर मालिक तथा तृतीय पुरस्कार श्री योगेंदर ने जीता।

दिनांक 15–9–2014 को एक हिंदी निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। निबंध का विषय भारतीय कृषि अर्थ व्यवस्था में महिलाओं का योगदान रखा गया था। इस प्रतियोगिता में कुल 10 प्रतियोगियों ने भाग लिया। प्रथम पुरस्कार डॉ. सोनिका अहलावत, द्वितीय पुरस्कार श्री कर्मबीर मालिक तथा तृतीय पुरस्कार संयुक्त रूप से डॉ. मोनिका सोढ़ी व श्रीमती करुना असीजा ने जीता।

दिनांक 16–9–2014 को पत्र लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। पत्र लेखन का विषय परित्यक्त पालतू पशुओं से शहर में पैदा होने वाली समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए इसके समाधान हेतु उपायुक्त महोदय को पत्र लिखिए, रखा गया था। इस प्रतियोगिता में कुल 13 प्रतियोगियों ने भाग लिया। प्रथम पुरस्कार श्री कर्मबीर मालिक, द्वितीय पुरस्कार डॉ. साकेत निरंजन तथा तृतीय पुरस्कार श्रीमती प्रवेश कुमारी ने जीता।

दिनांक 16–9–2014 को ही सांय 3–00 बजे संस्थान के सभी स्टाफ सदस्यों हेतु कंप्यूटर पर सरलता से हिंदी टंकण के प्रशिक्षण के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। हिंदी टंकण के प्रशिक्षण के लिए करनाल स्थित कल्पना चावला कंप्यूटर एजुकेशन सेंटर से 4 प्रशिक्षकों को आमंत्रित किया गया था। सभी प्रशिक्षकों ने अलग अलग प्रकार से कंप्यूटर पर ऑनलाइन, ऑफलाइन, प्रस्तुतीकरण व अभ्यास के माध्यम से हिंदी टंकण का प्रशिक्षण ब्यूरो स्टाफ को दिया। सभी उपस्थित वैज्ञानिकों, तकनीकी व प्रशासनिक स्टाफ सदस्यों ने इस प्रशिक्षण कार्यशाला में विशेष रूचि दर्शाई। इच्छुक स्टाफ

सदस्यों ने प्रशिक्षकों से अपने कंप्यूटर में ऑफलाइन हिंदी टंकण की सुविधा पाने अपने कंप्यूटर में डाउनलोड करवाकर चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया। यह प्रशिक्षण कार्यक्रम आशानुकूल सफल रहा।

दिनांक 16–9–2014 को टिप्पणी मसौदा लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में कुल 7 प्रतिभागियों ने भाग लिया। प्रथम पुरस्कार श्री योगेंदर, द्वितीय पुरस्कार श्री कर्मबीर मलिक तथा तृतीय पुरस्कार डॉ अवनीश कुमार ने जीता।

दिनांक 16–9–2014 को स्टाफ सदस्यों के द्वारा वर्ष 2013–14 के दौरान किये गए हिंदी कार्यों का मूल्याकन किया गया। इस प्रतियोगिता में कुल 05 प्रतियोगियों ने भाग लिया, जिसमे प्रथम पुरस्कार श्री कर्मबीर मलिक, द्वितीय पुरस्कार श्री बाबु राम को तथा तृतीय पुरस्कार संयुक्त रूप से श्री हरविंदर सिंह व श्री सोपाल ने जीता।

इस वर्ष विशेषत ब्यूरो वैज्ञानिकों, तकनीकी व शोध विद्यार्थियो के लिए हिंदी में शोध–पत्र लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमे की पिछले 5 वर्ष के अंतर्गत किये गए शोध कार्यों को आधार बनाया गया था. इस प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार डॉ. आर. के. पुंडीर व सहयोगी, द्वितीय पुरस्कार डॉ. मोनिका सोढ़ी व सहयोगी तथा तृतीय पुरस्कार डॉ. प्रताप सिंह पंवार ने जीता।

दिनांक 16–9–2014 को एक आशु भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। प्रतियोगिता का संचालन डॉ. रेखा शर्मा, वरिष्ठ वैज्ञानिक, ने छायाचित्रों के माध्यम से किया। इस प्रतियोगिता में कुल 17 प्रतिभागी रहे ओर प्रथम पुरस्कार डॉ. कर्णवीर सिंह, द्वितीय पुरस्कार डॉ. मोनिका सोढ़ी तथा तृतीय पुरस्कार श्रीमती अनीता चंदा ने जीता।

दिनांक 16–9–2014 को ही एक वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसका विषय पश्चिमी सभ्यता का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव रखा गया था। विषय के पक्ष व विपक्ष में बोलने हेतु प्रतियोगिओं को 5 मिनट का समय दिया गया। इस प्रतियोगिता के पक्ष में बोलने हेतु प्रथम पुरस्कार डॉ. रेखा शर्मा, द्वितीय पुरस्कार डॉ. मोनिका सोढ़ी ने जीता। विपक्ष में बोलने वालों में प्रथम पुरस्कार डॉ. कर्णवीर सिंह तथा द्वितीय पुरस्कार डॉ. अवनीश कुमार ने जीता।

दिनांक 12–19 सितम्बर के दौरान हुई लिखित व मौखिक प्रतियोगिताओं के विजेताओं को दिनांक 20–9–2014 को ब्यूरो के स्थापना दिवस समारोह के अवसर पर पुरस्कृत किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. एस.के. बंध्योपाध्याय, माननीय सदस्य, भारतीय कृषि वैज्ञानिक चयन मंडल ने, अपने अध्यक्षीय भाषण में आयोजित किये गए इन हिंदी कार्यक्रमों की सराहना करते हुए विजेताओं को पुरस्कार वितरित किये।

वार्षिक राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह के दौरान ही संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका पशुधन प्रकाश के चतुर्थ अंक वर्ष 2013 में छपे शोध लेखों में से तीन श्रेष्ठ लेखों को पुरस्कृत किया गया. इस प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार डॉ. पी. के. विज, डॉ. एस. के. निरंजन, डॉ. एम. एस. तांतिया व डॉ. बी. के. जोशी, एन.बी.ए.जी.आर. करनाल, के शोध पत्र पशुधन नस्ल पंजीकरण – राष्ट्रीय संपदा की सुरक्षा को मिला। द्वितीय स्थान डॉ. प्रदीप कुमार डोगरा, संजीत कटोच, यशपाल ठाकुर, वरुण संख्यान एवं राकेश कुमार, पशु चिकित्सा कश्वलेज, हि.प्र.कृ.वि.वि. पालमपुर के शोध पत्र हिमाचल प्रदेश की अमूल्य धरोहर – चमुर्थी घोष, को मिला। तृतीय पुरस्कार डॉ. देव व्रत सिंह, पशु चिकित्सा व पशु विज्ञानं महाविध्यालय, गो.ब.पं. कृषि व प्रो. वि.वि., पंतनगर के शोध पत्र पशुओं का उचित रख–रखाव ने जीता।

वार्षिक राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 20–09–2014 को ही संस्थान की वार्षिक हिंदी पत्रिका पशुधन प्रकाश के पंचम अंक वर्ष 2014 का विमोचन माननीय मुख्य अतिथि डॉ. एस. के. बंद्योपाध्याय जी द्वारा किया गया।

राजभाषा अधिकारी